भगवान् महावीर के २५वे शताब्दी समारोह के उपलक्ष में

सचित्र

जैन कहानियां

सचित्र

जैन कहानियां

(भाग १४)

लेखक

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

भूमिका

अणुव्रत-परामर्शक मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्०

सम्पादक

श्री सोहनलाल बाफणा

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

SACHITRA JAIN KAHANIYAN

PART 14

by

Muni Shri Mahendra Kumarji Pratham

Rs 2 50

First Edition 1971

प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली 6

शाखाएँ

हौज खास नई दिल्ली
चौड़ा रास्ता जयपुर
विश्वविद्यालय क्षेत्र चण्डीगढ़
17 अशोक मार्ग लखनऊ
काश्मीरी गेट दिल्ली

चित्रकार श्री व्यास कपूर

मूल्य दो रुपये पचास पैसे
प्रथम संस्करण 1971

मुद्रक
रूपक प्रिण्टर्स
शाहदरा दिल्ली 32

भू मि का

मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' द्वारा लिखित जैन कहानिया (भाग १ से १०) सन् १९६१ मे प्रकाशित हुई थी। भाग ११ से २५ अव सन् १९७१ में प्रकाशित हो रहे हैं। समग्र जैन-कथा साहित्य को शताधिक भागो में प्रस्तुत कर देने की लेखक की परियोजना है।

प्रथम १० भागों का प्रकाशन समग्र योजना के अकन का मानदण्ड वन गया। आत्माराम एण्ड सन्स जैसे विश्रुत-प्रकाशन सस्थान से एक साथ १० भागो के प्रकाशित होते ही जैन-जगत् और साहित्य-जगत् मे नवीन स्फुरणा-सी आ गई। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारो ने माना—वैदिक कहानियाँ, पौराणिक कहानिया, वौद्ध कहानिया शृ खलावद्ध होकर साहित्यिक क्षेत्र मे कव की आ चुकी है। जैन कहानियो का इस रूप मे अव-तरण यह प्रथम वार हो रहा है, अत स्तुत्य है और एक दीर्घ-कालीन रिक्तता का पूरक है।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने कहा—वहुत पहले जैन समाज के अग्रणी लोगो ने मुझे कहा—जैन कथाओ को भी आप अपनी शैली और अपनी भापा दे। मैने कहा—जैन कथा-साहित्य मुझे मिले भी ? प्रस्तावक व्यक्तियो ने वडे-वडे ग्रन्थ मेरे सामने लाकर रख दिए। वे सव देखकर मैंने कहा—ये विभिन्न भापा और विभिन्न विपयो मे आवद्ध ग्रथ मेरी अपेक्षा के पूरक कैसे हो सकेंगे ! इन ग्रथो मे तो प्रकीर्ण कथा-साहित्य है। मैं कव तक इनको पढ सकूँगा और कव तक कथा-सग्रह और कथा-चयन कर सकूँगा तथा कव तक फिर उस कथा-सग्रह

का अपनी भाषा और अपनी शली दे सकूँगा। मुझे तो सगहीत व सुनियोजित कथा साहित्य दे। मेरी इस माग का समाधान उनके पास नही था, अत वह बात वही रह गई। जन कहानियों के प्रस्तुत १० भाग ज्यों ही मेरे सामने आये, अविलम्ब मै पढ गया। जन कथा-साहित्य के प्रति मेरे मन म गुरुत्व का मनोभाव भी बना। अब इहें मैं या कोई भी साहित्यकार आसानी से अपनी भाषा दे सकता है। जन कथा-साहित्य के विस्तार का अब यह समुचित धरातल बन गया है।

श्री जनेन्द्रकुमार जी से जब यह पूछा गया कि सव-साधारण के लिए लिखी गई इन कथा-पुस्तकों को आप और अनेको अ य मूधन्य साहित्यकार रुचि व उत्साह से पढ गये, यह क्यों ? उ होने बताया "साहित्यकार को अपने उपन्यास व अपनी कहानियों की कथा-वस्तु भी तो दिमाग से गढनी पडती है। नवीन कथाओं का अध्ययन साहित्यकार के दिमाग को उवर बनाता है। नए बीज देता है। यही कारण है कि साहित्यकार इन सवसाधारण के लिए लिखी जन कहानियों को अविलम्ब पढ गये। साहित्यकार के अपने इस प्रयोजन के साथ साथ जन कथा-साहित्य की व्यापकता तो स्वत फलित होती ही है।"

जन कहानिया दिगम्बर-श्वेताम्बर आदि सभी जैन-समाजो मे मान्य हुई। शास्त्र सब जन-समाजों के एक भले ही न हो, पुरातन कथा साहित्य सबका समान है। सरल व सुबोध भाषा में जन-कथा-साहित्य का उपलब्ध हो जाना सभी के लिए रुचिवधक प्रमाणित हुआ। बच्चों, वद्धों, युवको व महिलाओं

मे जैन कहानिया पढने की अद्भुत उत्सुकता देखी गई। जो महिलाएँ एक-एक शब्द जोड-जोड कर पढती थी, वे दशो भाग पढने तक हिन्दी धारा-प्रवाह पढने लगी। धार्मिक परीक्षाओ मे इनका उपयोग हुआ। विद्यालयो के पुस्तकालयो मे ये व्यापक स्तर पर पहुची। जैन-जैनेतर विद्यार्थी स्पर्धापूर्वक इन्हे पढते। अग्रिम भागो की स्थान-स्थान मे माँग आने लगी।

सर्वसाधारण की प्रशस्ति के साथ विचार-जगत् से अनेक सुझाव भी आने लगे। कुछ लोगो ने कहा—पुस्तक-माला का नामकरण जैन कहानियाँ न होकर धार्मिक कहानिया या बोध-कहानियाँ ऐसा कोई नाम होता, तो इसकी व्यापकता सार्वदेशिक हो जाती। कुछेक विचारको ने सुझाया—कहानियाँ वर्गीकृत होनी चाहिए थी। प्रत्येक कहानी का ग्रथ-सदर्भ उसके साथ होना चाहिए था।

नामकरण के परिवर्तन का सुझाव अधिक उपयोगी नहीं लगा। सार्वजनिक व सार्वदेशिक नाम लेने मे ही कोई पुस्तक या कोई प्रवृत्ति सर्वमान्य व व्यापक बन जाती है, यह निरा भ्रम है। दूसरी बात, परम्परागत आधारो पर कथा-साहित्य की अनेक धाराएं साहित्य-जगत् मे पहले से ही प्रसारित हो चली है। इस स्थिति मे एक परम्परा-विशेष के कथा-साहित्य को सार्वजनिकता मे विलीन कर देना उस परम्परा के साथ ही न्यायोचित नही होता। ऐसा शक्य भी नही था। नामकरण के बदल देने से कथावस्तु तो बदलती नही। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी कथावस्तु मे अपनी सस्कृति, सभ्यता और परम्परा के मूल्य प्रतिबिम्बित होते है। यह आधार मिटा दिया जाए, तो कथावस्तु ही निराधार व निरर्थक बन जाती है।

अस्तु इन्ही तथ्यों को ध्यान मे रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक माला का नाम 'जैन कहानिया' ही अधिक सगत माना गया है।

वर्गीकरण और ग्रथ सदर्भ का सुझाव शोध विद्वानों की ओर से था। सुझाव उपयोगी तो था ही, पर, उसकी भी अपनी सीमा थी। प्रस्तुत पुस्तक माला मुख्यत लोक-साहित्य के रूप मे प्रकाशित हो रही है। अधिक से अधिक लोग इसे पढें व सात्त्विक प्रेरणा ग्रहण करें, यह इसका अभिप्रेत है। सर्व-साधारण को कथा की आत्मा से व उसकी रोचकता से अधिक प्रेम होता है, न कि उसके मूल ग्रथ और ग्रथकार से। किसी कथा को पढते ही शोध विद्वान् की दृष्टि इस पर पहुँचेगी कि इस कथा का मूल आधार क्या है वह कितना पुराना है, इस कथावस्तु पर अन्य किसी कथावस्तु का प्रभाव है या नही, अन्य परम्पराओ में यह कथा मिलती है या नही, आदि-आदि। शोध विद्वान की ये मौलिक जिज्ञासाए सर्व साधारण के लिए भूल भुलया है। अस्तु, पुस्तक माला के प्रयोजन को समझते हुए प्रत्येक कथा के साथ गवेपणात्मक टिप्पण जोडना आवश्यक नही माना गया। फिर भी लेखक ने इन अग्रिम भागो की कथाओं में मौलिक आधार अपने प्राक्कथन में बता दिए है। इससे शोध विद्वानों को प्राथमिक दिग्दर्शन तो मिल ही जायेगा। लेखक की परिकल्पना है इस पुस्तक माला की सम्पूर्ति के पश्चात् समग्र कथाओं के वर्गीकृत रूप का गवेपणात्मक टिप्पणियो के साथ स्वतन्त्रसस्करण पृथक ग्रथ के रूप में तयार किया जाए।

कथावस्तु की सरसता बढाने के लिए प्रकाशक ने प्रत्यक कथा में घटना-सम्बद्ध एक-एक चित्र दिया है। चित्रकार ने जन

साधु की मुद्रा लेखक की वेशभूषा में ही चित्रित की। यह स्वाभाविक भी था। पर, स्थिति यह है कि जैन-साधु की कोई भी एक वेष-भूषा जैन-समाज मे सर्वसम्मत नही है। दिगम्वर मुनि अचेलक है। श्वेताम्बर मुनि वस्त्र-धारक है, पर, उनमें भी दो प्रकार है, मुखपतिवद्ध और अमुखपतिवद्ध। श्वेताम्वर मूर्तिपूजक मुनि अमुखपतिवद्ध है तथा स्थानकवासी और तेरापन्थी, दोनो मुखपतिवद्ध है। स्थानकवासियो और तेरापन्थियो मे भी मुखपति के छोटे-वडेपन व आकार-प्रकार का अन्तर है। सहस्राब्दियो पूर्व के जैन-साधुओ का श्वेताम्वर रूप था या दिगम्वर रूप, यह भी अपनी-अपनी मान्यता का विषय है। इस स्थिति मे गौतम, स्थूलिभद्र आदि प्राचीन व सर्वमान्य भिक्षुओ की वेष-भूषा क्या चित्रित की जाए, यह एक जटिल प्रश्न वन जाता है। हाँ, महावीर व अन्य तीर्थकरो के स्वरूप मे सभी जैन-समाज एकमत है। उनकी अचेलक व्यवस्था निर्विवाद है। दसो भाग ज्यो ही प्रकाशित होकर आये और चित्रो में जहा-जहाँ जैन मुनियो की उपस्थिति आई, वहाँ-वहाँ उनका स्वरूप मुखपतिवद्ध आया। मुखपति भी तेरापन्थी आकार-प्रकार की। लेखक के लिए यह सव सकोच का विषय वना। उनके मन मे तो ऐसा कोई आग्रह था नही। स्थितिवश यह सव हुआ। प्रश्न यह है कि जैन-साधु का कोई भिन्न स्वरूप भी चित्रकार देता, तो क्या देता? कोई सर्व-सम्मत रूप है भी तो नही।

लेखक के प्रति अकारण ही कोई सकीर्णता की धारणा वने, यह भी वाछनीय नही था, अत. आगामी दस भागो के लिए यही निर्णय लिया गया कि जैन साधु की अनिवार्यता

वाला घटना प्रसग चित्रवद्ध किया ही न जाए। इस निणय से चित्रकार की स्वत त्रता म बाधा आएगी। यथाथ व प्रभावपूण घटना को छोडकर उसे साधारण घटना-प्रसगो को चित्रबद्धता दनी होगी। इससे पुस्तक व कथावस्तु का आकपण भी न्यून होगा पर, इसके सिवाय प्रस्तुत समस्या का कोई समाधान भी तो नही था।

पूव प्रकाशित भागों के नए सस्करणो मे भी यह सशोधन उपादय हो सकेगा। चालू सस्करणो को तो स्थिर प्रज पाठक निर्भ्रान्त भाव से पढते रहेगे, यह आशा है ही।

लेखक की समग्र जैन कथा साहित्य को इसी शृखला मे लिख देने की परिकल्पना है। उन्होंने अपने लेखन का विषय ही कथा-साहि य बना लिया है। पश्चिमी लेखकों ने इसी प्रकार एक एव विषय पकडकर वडे बडे साहित्यिक काय कर बताए हैं। भारतीय लेखक व साहित्यकार शृ खलाबद्ध काय के पर्याप्त आदी नही बने है। अब वह क्रम उनमें आ रहा है, यह सन्तोष की बात है। मुनि महे द्रकुमार जी 'प्रथम' अपने सकल्प को परिपूण कर हि दी जगत को बडी दन दग व जन-जगत को अनुगृहीत करेंगे, ऐसी आशा है।

तेरापथ साधु सघ लेखको कविया एव साहित्यकारों का एक उवर धाम है। अनुशास्ता आचाय श्री तुलसी के निर्दे-शन में अनेक धाराओं म साहित्यिक काय चल रहा है। इसी का एक उदाहरण मुनि महेन्द्रकुमार जी प्रथम' की ये कथा-कृतियाँ है।

१२ दिसम्बर १९७०

—मुनि नगराज

प्राक्कथन

'वर्धमान देशना' एक विश्रुत ग्रन्थ है। इसमें भगवान् श्री महावीर की देशना (प्रवचन) का सकलन कथाओ के माध्यम से किया गया है। उपासकदसाग मे वर्णित दस प्रमुख श्रावको का जीवन इस ग्रन्थ का मुख्य आधार है। दसो श्रावक एक-एक कर भगवान् महावीर के उपपात मे पहुचते है और देशना से प्रभावित होकर श्रावक के बारह व्रत स्वीकार करते है। सर्वप्रथम गृहपति आनन्द आता है। भगवान् महावीर उसे सम्यक्त्व का महत्त्व बताते है तथा उसके अनन्तर बारह व्रन। सभी के प्रतिपादन मे वहा रोचक कथाओ का आलम्बन लिया गया है। गृहपति आनन्द के श्रमणोपासक बनने के बाद कामदेव आदि भी श्रावक वनते है और उन्हे भी भगवान् महावीर धर्म के विभिन्न पहलुओ को कथाओ के द्वारा समझाते है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे तैतीस कथाए है। आराम-शोभा जातक, रत्नसार जातक तथा सारण, इन कथाओ को अलग कर छव्वीस कर दिया गया है। सभी कथाओ को तीन भागो मे विभक्त किया गया है। प्रस्तुत भाग मे ८ कथाएँ है। गृहपति आनन्द आदि की कथाओ को इन भागो मे सम्मिलित नही किया गया है। वे सब १९वे भाग मे दी गई है।

'वधमान देशना' की एक रचना प्राकृत म वि०स० १५५२ म शुभवधन गणि द्वारा की गई थी। आगे चलकर इसका मस्कृत मे भी रूपान्तर हुआ।

जन कथाओ के आलखन का क्रम विगत एक दशाब्दी से चला आ रहा है। अनचाहे ही यह लेखन का मुख्य विपय बन गया और क्रमश अनेकानेक कथाए मस्कृत प्राकृत अपभ्र श तथा प्रान्तीय भापाओं से रूपान्तरित होकर एक शृ खला मे सम्बद्ध होने लगी। कथाओं का पठन तथा श्रवण सर्वाधिक प्रिय था ही, पर लेखन भी इनके साथ अनुस्यूत हो जाएगा यह कल्पना नही थी। किन्तु, अनायास हो गया और उससे मानसिक प्रसत्ति का एक सुन्दर स्रोत फूट पडा। इस बीच प्राचीन आचार्यों के अनेका-नेक कथा-सग्रह के ग्र थ भी देखे और उनसे कथाओं का चयन आरम्भ किया। सक्षिप्त व विस्तृत दोनो शैलियों मे लिखे गये ग्र थों के स्वाध्याय मे कथा-वस्तु की जानकारी मे पर्याप्त योग मिला पर उसकी विविधता ने उतनी ही जटिलता भी प्रस्तुत कर दी। एक ही कथा के अनेक रूप निर्णायकता में कठिनता उपस्थित कर रहे थे। अपनी मनीपा से ही किसी निष्कप पर पहुचकर आलेखन का प्रयत्न किया गया है। हो सकता है बहुत सारे स्थलो पर मत भिन्नता तथा परम्परा की भिन्नता भी हो, पर, सवसम्मतता के अभाव म एक ही प्रकार की कथा का ग्रहण आवश्यक भी था। जहा तक स्वय की मान्यताओ का प्रश्न था बहुत सारे स्थलो पर उनका आग्रह न रखकर कथावस्तु को ज्यो का-त्यो रखा गया है, ताकि तात्कालीन परिस्थितियों के बारे म पाठक अपना निणय स्वत कर सकें। मैंने अपना

निर्णय पाठको पर थोपने का यत्न नही किया है। बहुत सारे स्थलो पर कथा-वस्तु मे तनिक-सा परिवर्तन कर देने पर विशेष रोचकता भी हो सकती थी, किन्तु, प्राचीन कथाओ की मौलिकता को बनाये रखने के लिए ऐसा भी नही किया गया।

जैन कथा-साहित्य जितना विस्तीर्ण है, उतना ही सरस भी है। आज तक वह आधुनिक भाषा मे नही आया था; अत वह अपरिचित भी रहा। मुझे यह अनुमान नही था कि पच्चीस भाग लिखे जाने के बाद भी उसकी थाह अज्ञात ही रहेगी। ऐसा लगता है, जैन कथा-साहित्य के छोर को पाने मे अनेक वर्षो की अनवरत तपस्या आवश्यक है। आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका आदि मे कथाओ का विपुल भण्डार है। रास-साहित्य ने उसमे विशेषत और अभिवृद्धि की है। ज्यो-ज्यो गहराई मे पहुचा जाएगा, त्यो-त्यो विशिष्ट प्राप्ति भी होती जाएगी तथा और गहराई मे घुसने के लिए उत्साह भी वृद्धिगत होता जाएगा।

मुझे प्रसन्नता है कि जैन कहानियो का समाज के सभी वर्गो मे विशेष समादर हुआ। कहना चाहिए, उसी कारण इस दिशा मे निरन्तर लिखते रहने का उत्साह जगा। आरम्भ मे योजना छोटी थी, पर, अब वह स्वत काफी विस्तीर्ण हो चुकी है। पहली बार मे दस भाग पाठको के समक्ष प्रस्तुत हुए थे और अब दूसरी बार अगले पन्द्रह भाग प्रस्तुत हो रहे है। इसी क्रम से बढते हुए शीघ्र ही सौ भागो की अपनी मजिल तक पहुचना है। भगवान् श्री महावीर के २५वे शताब्दी समारोह तक यदि यह कार्य सम्पन्न हो सका, तो विशेष आह्लाद का

निमित्त होगा।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी के वरद आशीर्वाद ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवत्त किया और अणुव्रत परामर्शक मुनि-श्री नगराज जी डी० लिट० के मार्ग दर्शन ने उसमे गतिशील किया। जीवन की ये दोनों ही अमूल्य थाती हैं। मुनि विनय कुमार जी आलोक' तथा मुनि अभयकुमारजी का सतत साहचर्य सहयोग लेखन में निमित्त रहा है।

१५ नवम्बर, ७०	—मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'
दिल्ली

अनुक्रम

१ सहस्रमल्ल .. १

२. सारण .. २७

३. धिष्ट ... ३२

४ कुलध्वज .. ५८

५ दामनक . ७५

६ असमत ८५

७ भीमकुमार . ९२

८ सागरचन्द्र . १०५

: १

सहस्रमल्ल

कौशाम्बी मे महस्रमल्ल नामक एक वणिक्-पुत्र रहता था। वह दुर्गुणो का पिण्ड था। दूसरो को ठगने, झूठ बोलने व चोरी करने में बहुत कुशल था। वह नाना भाषाए जानता था और नाना वेष बनाने में भी सिद्धहस्त था। धूर्तता मे भी वह अग्रणी था।

रत्नसार नामक रत्नो का एक व्यापारी भी कौशाम्बी में रहता था। धूर्त सहस्रमल्ल वणिक् के वेष मे एक दिन रत्नसार की दूकान पर आया। रत्नों के बारे मे पूछताछ की। आकृति से वह एक भला बनिया लगता था, अत रत्नसार ने उसे वहुमूल्य रत्न दिखलाये। सहस्रमल्ल उन्हे देखकर तृप्त नही हो पाया। उसने और भी बहुत सारे रत्न देखने चाहे। रत्नसार कुछ लोभ मे आ गया। उसने सोचा, आज अच्छा ग्राहक पकड मे आया है। महीनो मे विकने वाला

माल एक ही दिन मे बिक जायेगा। उसने अपनी दूकान का सारा माल दिखला दिया। सहस्रमल्ल ने वे रत्न भी देख लिए और दूकान का भेद भी बडी चातुरी से ले लिया। उसने सेठ से कहा—"मैं तेरे सारे ही रत्न खरीदना चाहता हू, पर, मूल्य कल चुकाऊँगा।" सेठ रत्नसार ने अपना माल समेट लिया और उत्तर दिया—"मै उधार से किसी को भी माल नही देता।"

सहस्रमल्ल की दृष्टि बहुत पैनी थी। उसने बहुत थोडे समय में ही दूकान का अच्छी तरह अवलोकन कर लिया। रात को चोर के वेष में सहस्रमल्ल आया। रोशनदान में पैर डालकर दूकान मे उतरने का प्रयत्न करने लगा। दुकान मे श्रेष्ठी रत्नसार के पुत्र सो रहे थे। वे जग पडे। बडी सतकता के साथ उन्होंने चोर के पैर पकड लिये। चोर बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगा। श्रेष्ठी पुत्र उसे अपनी ओर खीचते। खीचातानी मे सहस्रमल्ल के शरीर में बहुत सारी खरोच पड गई और अतिशय घर्षण से वह लहूलुहान भी हो गया। श्रेष्ठी पुत्रो को उस पर दया उमड आई। उन्होंने उसे छोड दिया। चोर घर पहुचा। उसने माता को सारा व्यतिकर सुनाया। वेदना से वह अतिशय पीडित हो रहा था। साथ ही निराशा भी उसे घेरे

हुए थी । माता ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"चोरी करने वाले को तो ये कष्ट सहने ही पडते है। वर्षो की दूसरों की कमाई को हस्तगत कर लेना और सर्वदा निरापद ही रह जाना, यह कतई नही हो सकता। जो कतरा जाता है, वह इन कार्यो में कभी सफल नही हो सकता। द्यूतकार सारण ने चोरी मे जो कष्ट उठाया था, तू ने तो उसके चतुर्थांश का भी अनुभव नही किया है और निराश होकर घर आ बैठा है ?"

सारण के बारे में सहस्रमल्ल द्वारा जिज्ञासा किये जाने पर मा ने उसके जीवन-वृत्त पर सविस्तार प्रकाश डाला और ढाढस बधाते हुए कहा—तेरी पीडा सारण[1] की पीड़ा के समक्ष नगण्य है। चोरी करने वाले को ऐसी स्थितियो से सदैव जूझना ही पड़ता है। जो घबरा जाता है, वह असफल हो जाता है। जो अपने पौरुष को थामे रहता, वह शीघ्र ही सफल भी हो जाता है। मां की प्रेरणा ने सहस्रमल्ल की निराशा को समाप्त कर दिया। वह कुछ ही दिनो मे स्वस्थ्य होकर पुन. चौरी मे प्रवृत्त हो गया।

सहस्रमल्ल प्रतिदिन शहर में चोरी करता और

---

१ विस्तार के लिए देखे, सारण

धन बटोर लाता। एक दिन उसने पुरोहित के घर चोरी की। वहाँ उसे बहुत सारा धन मिला। मन में फूला हुआ वह घर आया और उसने सारा धन मा के समक्ष रखा। मा का हृदय भी पुलक उठा। उसने पूछा—'तुझे इतना धन कहा मिला ?'' सहस्रमल्ल ने कहा—'मा ! तुम यह प्रश्न मत करो। प्रात काल तुम्हें शहर में जाना है और जन-चर्चा सुनकर मुझे बताना है।'

सूर्योदय के अनन्तर माँ शहर मे गई। उसे बहुत सारी स्त्रियाँ मिलीं। सबके मुह पर एक ही चर्चा थी—"आज तो पुरोहित लूटा गया।" पुरोहित के प्रति अपनत्व व्यक्त करते हुए एक ने पूछा—"चोर का कही पता लगा ?" दूसरी ने कहा—"पुरोहित ने राजा को सारी स्थिति से अवगत कर दिया। राजा ने तत्काल आरक्षक को बुलाया और सभा के बीच ही उसको भर्त्सना की। आरक्षक भौचक्का-सा रह गया। वह न उगल सका और न निगल सका। श्रेष्ठी धन-सार भी वही बैठा था। उसने राजा से निवेदन किया—"निश्चित ही आज वह मेरी दूकान पर अच्छे-अच्छे वस्त्र खरीदने के लिए आयेगा। मैं सजगता रखूगा और उसे पहचान कर आपके समक्ष उपस्थित

कर दूंगा ।" दिवाकीर्ति नामक एक नापित भी वही बैठा था । उसने कहा—"आज वह मेरे पास हजामत बनवाने के लिए आयेगा । मै भी सावधान रहूँगा । उसे पहचान कर आपकी सेवा में प्रस्तुत कर दूँगा ।" मां इन चर्चाओं को सुनकर घर आई । सहस्रमल्ल को सारी घटना से उसने अवगत किया और कहा—"आज तेरे लिए चप्पे-चप्पे पर कांटें बिखेर दिये गये है ।"

सहस्रमल्ल मे चोर का वेष छोड दिया । एक धन-कुबेर सेठ का रूप बनाया और दिवाकीर्ति नापित के घर आया। नापित ने उसका हार्दिक स्वागत किया। एक विशेष आसन पर उसे बिठलाया और केशो व नखो का उत्कर्तन किया। मर्दन करने के अनन्तर स्नान कराया । सहस्रमल्ल ने उससे पूरी सेवा ली । नापित सेवा देकर भी बहुत प्रसन्न था । सहस्रमल्ल ने नापित से कहा—"तुम अपने पुत्र को मेरे साथ भेज दो । मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हूँ; अत. अपनी दूकान से आज विशेष पारिश्रमिक देना चाहता हूँ ।" नापित निहाल हो उठा। वह सोच रहा था, आज मेरे लिए स्वर्णिम दिवस है । उसने पुत्र को सहस्रमल्ल के साथ भेज दिया । वह सीधा धनसार श्रेष्ठी की दूकान पर आया । रौब-दौब व शान-शौकत के साथ उसे

अपनी दूकान की ओर आते हुए जब श्रेष्ठी ने देखा, वह भी पुलक उठा। वह भी सोचने लगा, ऐसे ग्राहक तो भाग्य योग से बहुत ही कम आते हैं। उसने उसे ऊँचे आसन पर बिठलाया। शिष्टाचार की बातो के अनन्तर क्रय-विक्रय का प्रसग चल पडा। श्रेष्ठी ने अपनी दूकान के बहुमूल्य वस्त्रों का उसके आगे ढेर लगा दिया। आगन्तुक श्रेष्ठी ने उसे गौर से देखा और अपने लिए कुछ वस्त्रों को चुना। उनका मूल्य भी अच्छा था। आगन्तुक श्रेष्ठी ने कहा—"मैं माल ले जाता हूँ और मूल्य लेकर अभी आता हूँ। जब तक मैं न आ पाऊँ, तब तक यह मेरा लडका यही बैठा है। आपको किसी प्रकार के सन्देह का अवकाश नही होगा।"

श्रेष्ठी को धोखा देकर सहस्रमल्ल अपने घर लौट आया। कीमती वस्त्र मा के सामने रखते हुए उसने कहा—'तुम अब एक बार शहर में फिर जाओ और जन-चर्चा सुनकर मुझे बतलाओ।"

मा शहर मे घूमकर आई। सहस्रमल्ल को नगर-चर्चा सुनाते हुए उसने कहा—"नापित और श्रेष्ठी ने राजा से निवेदन किया, हम तो आज उस चोर के द्वारा लूटे गये। हमने उसे पकडने का प्रयत्न किया

था और वह हमारी आंखो मे ही कज्जल डाल गया।" सुनते ही राजा की भौहे तन गई। राज-सभा को उसने सरोष निहारा। एक अश्व-व्यापारी वहा बैठा था। उसने राजा से निवेदन किया—"जिसके पास धन बढ़ता है, वह घोडा अवश्य खरीदता है। चोर के लिए तो घोडा और भी आवश्यक होता है। घोड़ा खरीदने के लिए वह निश्चित ही मेरे पास आयेगा। मैं आपकी दुविधा से परिचित हूँ, अत. ज्यो ही वह मेरे पास आयेगा; मै कुशलता से उसे आपकी सेवा में प्रस्तुत कर दूँगा।"

राजा को कुछ सन्तोष हुआ। कामपताका वेश्या भी वही थी। उसने भी अवसर का लाभ उठाया। उसने भी कहा—"जिसके नया धन आता है, वह तो सबसे पहले मेरे ही द्वार पर पहुँचता है। चोरी या जूए मे धन कमाने वालो का आराध्य तो मैं ही हूँ। पहली रात में वह मुझे छोडकर अन्यत्र रह भी नही सकता। राजन्! वह चोर भी आज मेरे पास अवश्य आयेगा। मेरी चातुरी से आप परिचित है ही। मैं उसके किसी भी प्रलोभन में नही आऊँगी। ज्योंही उसने मेरा द्वार खटखटाया, मै उसे आपकी सेवा में पहुँचा दूँगी।"

धनसार श्रेष्ठी और नापित गफलत मे रह सकते है, पर घोडे का व्यापारी और कामपताका कभी गलफत मे नही रह सकते। कौन-सा ऐसा काम होगा, जो कामपताका ने आरम्भ किया हो और वह पूर्णत सफल नही हो पाया हो। आज चोर पाताल में भी नही छुप सकता, राजा के मन मे नाना प्रकार के विचार उभर रहे थे।

मा से नगर-चर्चा सुनकर सहस्रमल्ल ने उन दोनों की शेखी को भी समाप्त करने की ठानी। उसने सार्थवाह का वेष बनाया और उसी क्षण घोडे के व्यापारी के पास पहुँचा। घोडे के व्यापारी ने आगन्तुक सार्थवाह का विशेष सम्मान किया। सार्थवाह ने आत्मीयता व्यक्त करते हुए कहा—"आप शहर के बाहर ही कैसे ठहर गये? आप जैसे सज्जन पुरुषों का निवास तो शहर में होना चाहिए।"

घोडे के व्यापारी ने सहज भाषा मे उत्तर दिया—"मैं तो प्रवासी हूँ। शहर में मेरा कोई निवास-स्थान नहीं है, अत यही ठहर गया।"

सार्थवाह ने कहा—"तो क्या बात है? आप मेरे घर पधारें। वह निवास स्थान भी तो आपका ही है।"

घोडे के व्यापारी ने उस प्रसग को टालना चाहा।

उसने कहा—"प्रवासी व्यक्ति यदि किसी अपरिचित व्यक्ति के घर ठहरता है, तो उससे नाना आशकाए उभर आती है। उससे शहर का वातावरण दूषित हो जाता है। मै व्यापारी हूँ। मुझे अपना माल बेचना है और यहाँ से बहुत सारा माल खरीदना भी है। क्रय-विक्रय मे लाभ के स्थान पर हानि का प्रसग उपस्थित हो जाता है। कोई भी व्यापारी घाटे का काम करना नही चाहता।"

सार्थवाह ने अपने तर्क से पूर्व प्रसंग को काटते हुए कहा—"यदि किसी सन्देहशील व्यक्ति के घर प्रवासी व्यक्ति ठहर जाता है, तो वही बात होती है, जो आपने कही है, किन्तु, किसी सज्जन व प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर विश्राम लेने मे किसी प्रकार की आशंका नही उभर सकती। मै आपको अपने घर ठहराऊ, आपका स्वागत करू, उसमे यदि आपकी हानि हो, तो मुझे भी तो क्या लाभ हो सकता है? मेरा कोई व्यक्तिगत प्रयोजन तो नही है?"

घोडे का व्यापारी सार्थवाह की आत्मीयता से अतिशय प्रभावित हुआ। उसने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। सार्थवाह उसी समय कामपताका के घर आया। उसे प्रलोभन देते हुए कहा—"एक महा-

धनी विदेशी अश्व-व्यापारी तेरे घर निवास के लिए आयेगा, अत उसके निवास के लिए शीघ्र ही व्यवस्था कर। कामपताका हर्षित हुई। उसने अपने मकान को सभाया-सवारा। कुछ ही समय बाद उस व्यापारी के साथ सहस्रमल्ल वहा आया। वेश्या ने उनका स्वागत किया और एक विशेष कक्ष में उन्हें उतारा गया। सहस्रमल्ल वेश्या के पास आया। वेश्या ने उसका पाद-प्रक्षालन करना चाहा। सहस्रमल्ल ने कहा—"अभी पाद-प्रक्षालन का समय नही है। यह समय तो राजा से बातचीत के लिए निश्चित है, अत मुझे वहा जाना है। कितना सुन्दर हो, यदि तुम अपने आभरण एक बार मुझे दे सको। मेरा काम निकल जायेगा और तुझे आर्थिक प्राप्ति होगी। वेश्या का मन ललचा गया। उसने बहुमूल्य आभूषण उसे दे दिये। सहस्रमल्ल घोडे के व्यापारी के पास गया। उससे भी उसने एक प्रधान घोडा मागा और कहा—"अभी अभी मुझे राजा से मिलना है। तुम यहा रहो और मैं शीघ्र ही लौट आऊगा।" उसने उसे घोडा दे दिया।

आभूषण और घोडा लेकर सहस्रमल्ल घर आया। भार्या को सारी वस्तुए सौपकर नगर-चर्चा जानने के लिए शहर मे भेजा। जब बहुत सारा समय बीत गया

कुछ ही समय वाद उस व्यापारी के साथ सहस्रमल्ल वहाँ आया। वेश्या ने उनका स्वागत किया और एक विशेष कक्ष मे उन्हे उतारा गया।

और सहस्रमल्ल नही आया, तो कामपताका विह्वल हो उठी। वह राजद्वार पर पहुची। उसने वहा खडे व्यक्ति से किसी घुडसवार के आने के बारे मे पूछा। उसने कहा—"यहाँ तो कोई नही आया।" वेश्या व्याकुल हो गई। वह उल्टे पैरों घर लौट आई। उसने अश्व-व्यापारी से पूछा—"तुम्हारा साथी कहाँ गया है ? वह अभी तक लौटकर क्यो नही आया ? मेरे तो वह बहु-मूल्य आभूषण ले गया है।"

अश्व व्यापारी ने कहा—"वह मेरा भी घोडा ले गया है। वह कौन है, यह भी तो बताओ। मै तो उससे अपरिचित हूं। उसने तो मुझे बताया था—"यह मेरा घर है। इसीलिए मै उसके साथ आया। पर, अब ज्ञात होता है कि वह कोई धूर्त्त था। उसने हमे ठग लिया है।"

दोनो ही राज सभा मे आये। उनके चेहरे मुर-झाये हुए थे। राजा ने जब सारी स्थिति जानी, तो उसके रोष का पार नही रहा। उसने कहा—"चोर बडा धूर्त्त है। वह प्रत्येक व्यक्ति को चकमा देकर निकल जाता है। यदि वह नहीं पकडा गया, तो यह एक कलक की बात होगी।" नगर-रक्षक को बुलाया और कडा आदेश देते हुए कहा—"पाच दिन में ही

चोर को पकड कर उपस्थित करो; अन्यथा तुम्हारे पर कडी कार्यवाही की जायेगी।" नगर-रक्षक ने उसे शिरोधार्य किया।

मा ने सहस्रमल्ल को सारी घटना सुनाई और कहा—"तुझे विशेष जागरूकता रखनी चाहिए। नगर-रक्षक तेरी फिराक मे है। कही ऐसा न हो जाये कि तू उसके चगुल मे फस जाये।"

सहस्रमल्ल ने कहा—"मा तुम मत डरो। वह मेरा कुछ भी नही बिगाड सकेगा। मै उसका भी सारा धन ले आऊँगा और तुझे भेट करूगा। तू मुझे अवश्य ही बधाई देगी।"

सहस्रमल्ल ने ब्राह्मण का वेष बनाया। शहर की प्रमुख-प्रमुख सडको से गुजरता हुआ एक देवालय में आया। वहा कुछ व्यक्ति जूआ खेल रहे थे। सहस्रमल्ल भी वही खेलने के लिए बैठ गया। नगर-रक्षक भी घूमता हुआ वही पहुच गया। द्यूत-क्रीडा जम रही थी। उसका भी जी ललचा गया। वह भी खेलने मे संलग्न हो गया। कुछ ही समय बाद नगर-रक्षक और सहस्रमल्ल के बीच दाव-पेच होने लगे। दोनो ही एक दूसरे को पराजित करने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु, नगर-रक्षक का दांव नही लग सका। सहस्रमल्ल दक्ष

था। उसने नगर-रक्षक को पराजित कर उसकी नामा-कित मुद्रिका जीत ली। उसी समय एक राजसेवक आया और उसने कहा—"महाराज आपको इसी क्षण याद कर रहे हैं।" नगर-रक्षक राजसेवक के साथ राजमहलो में आ गया।

दूसरे को ठगने वाला चातुरी का पूरा ही जाल बिछाता है। सहस्रमल्ल नामाकित मुद्रिका लेकर नगर-रक्षक के घर आया। उसने उसकी पत्नी से कहा—'सुभगे! तुम्हारे पर आपत्ति का एक बडा पहाड टूट पडा है। उससे तुझे बचाने के लिए मैं आया हू। अपने घर की बहुमूल्य वस्तुए शीघ्र ही मुझे दे दो।"

नगर रक्षक की पत्नी को अपने कानो पर विश्वास नही हुआ। उसने प्रस्तुत प्रसग की गहराई में जाने का प्रयत्न किया। उसने पूछा—"महाभाग! तुम्हें किसने भेजा है?"

सहस्रमल्ल—"नगर रक्षक ने।"

पत्नी—"वे कहा है और हमें कौन सी विपत्ति का सामना करना होगा कुछ बताओ तो?"

सहस्रमल्ल—"नगर-रक्षक किसी अपराध मे राज-पुरुषों द्वारा पकडा गया है। राज सेवक उसे दृढ बधनों से बाधकर राजाके पास ले जा रहे थे। मार्ग मे उसे

मै मिला। सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए उसने मुझे तुम्हारे पास भेजा है और सारी सम्पत्ति किसी सुरक्षित स्थान पर पहुचाने के लिए मुझसे कहा है। यदि तुम्हे विश्वास न हो, तो यह देखो नामांकित मुद्रिका।"

पत्नी घबरा गई। उसने सारा धन निकाल कर उसके हवाले कर दिया। सहस्रमल्ल धन को लेकर अपने घर लौट आया।

नगर-रक्षक जब घर आया, तो सारी कलई खुल गई। पत्नी ने सबसे पहला प्रश्न किया—"आप इतने शीघ्र ही मुक्त हो गये? क्या किसी का सहयोग प्राप्त हो गया था?"

नगर-रक्षक ने कहा—"मैं किसके द्वारा पकडा गया था?"

पत्नी—"राजा के द्वारा।"

नगर रक्षक—"तुझे यह किसने कहा?"

पत्नी—"आपने ही तो एक व्यक्ति को भेजा था? उसने आपकी नामांकित मुद्रिका मुझे दिखाई थी। साथ ही उसने घर की बहुमूल्य सम्पत्ति भी देने के लिए कहा था।"

नगर-रक्षक ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या तूने उसे सम्पत्ति दे दी?"

पत्नी ने सविस्तार सारी घटना सुनाई और कहा—"मैने तो उसे सम्पत्ति दे दी है।"

नगर-रक्षक ने सिर पकड लिया और गम नि श्वास छोडते हुए कहा—"मै तो उसे पकडना चाहता था और उसने मुझे ही चकमा दे दिया। राजा मुझे क्या कहेंगे ?"

नगर-रक्षक बहुत समय तक हृदय को हल्का करता रहा। साहस बटोर कर वह राजा के पास आया और वस्तुस्थिति से उसे परिचित किया। चोट पर चोट लगने से रोष का उभरना सहज होता है। राजा ने कहा—'यह दुष्ट तुम किसी के वश का नही है। मैं ही उसे पकडूगा। यदि वह चोर मेरे भय से आकाश, पाताल या समुद्र में भी छुपने का प्रयत्न करेगा, मैं उसे छुपने नहीं दूगा। शीघ्र ही जनता को सकट-मुक्त करना है।"

विनम्रता से नगर-रक्षक ने कहा—"आपके द्वारा प्रयत्न होने पर वह निश्चित ही पकडा जायेगा। मनचाही वर्षा होने पर दुर्भिक्ष की कभी सम्भावना नही रहती।"

सहस्रमल्ल के लिए उसकी मा सूचना का अच्छा साधन थी। वह शहर में घूमकर स्त्रियों के मुख से

चर्चा सुनती रहती थी और पुत्र को सावधान कर देती थी। राजा द्वारा चोर का पता लगाने की प्रतिज्ञा भी उसने वता दी थी। सहस्रमल्ल निर्भय था। उसने कहा—"मां ! मै कितना पुण्यशाली हूँ कि मेरे लिए राजा को भी मैदान मे उतरना पडा।"

सहस्रमल्ल नाना वेष वनाने में कुशल था, तो नाना कलाओं में भी वह प्रवीण था। अंग-मर्दक का वेष बनाकर वह राजमहलों के द्वार पर आया। द्वार-पाल से राजा को सूचित करने के लिए कहा। द्वार-पाल राजा के पास आया। उसने निवेदन किया—"दूर देश से एक अंग-मर्दक ग्राया है। लगता है, वह अपनी कला मे विशेप कुगल है। वह ग्रापके दर्शन चाहता है।" राजा ने तत्काल प्रवेश की अनुमति प्रदान की। सहस्रमल्ल द्वारपाल के साथ राजा के पास आया। उसने शिर झुकाकर नमस्कार किया ग्रौर निवेदन किया—"मै ग्रपनी कला ग्रापके चरणो में प्रस्तुत करना चाहता हूँ। मुझे भी एक ग्रवसर प्रदान करे।" राजा तत्काल तैयार हो गया। उसने ग्राभूपण उतार कर एक ग्रोर रख दिए ग्रौर पल्यक पर लेट गया। सहस्रमल्ल ने मर्दन ग्रारम्भ किया। हाथ की कुशलता थी कि राजा गीघ्र ही निद्राधीन हो गया।

अट्टणमल्ल द्वारपाल के साथ राजा के पास आया। उसने सिर झुकाकर नमस्कार किया और निवेदन किया— मैं अपनी कला आपके चरणों में प्रस्तुत करना चाहता हूँ। मुझे एक अवसर प्रदान करें।

नींद भी गहरी थी। सहस्रमल्ल ने अवसर का लाभ उठाया। सारे ही आभूषण बटोर कर उसने थैले में डाल लिए और घर की ओर प्रस्थान कर दिया। द्वारपाल ने भी उसे नहीं रोका। घर पहुँचकर सारे आभूषण माता के समक्ष रखे और सारी घटना सुनाई। माता के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

प्रातःकाल राजा जगा। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। अङ्ग-मर्दक व आभूषण गायब थे। राजा को काटो तो खून नहीं। चोर पकड़ने का राजा ने बीड़ा उठाया और स्वयं उसी चोर के द्वारा छला गया। राजा पर उस घटना का गहरा असर हुआ। चेहरा फीका पड़ गया। समय पर राज-सभा में आया, पर, राजा का मन किसी भी काम में नहीं लग रहा था। सामन्त, मन्त्री आदि भी सभा में उपस्थित थे। राजा के उड़े हुए चेहरे को देखकर उन्हें भी चिन्ता हुई। राजा से उसका कारण पूछा, तो उसने रात का सारा वृत्तान्त सुनाया। मन्त्री ने कहा—"चोर सामान्य नहीं है। इसे बल से नहीं पकड़ा जा सकेगा। छल या मन्त्र-प्रयोग ही इसमें विशेष योगभूत होंगे।"

राजा ने कहा—"जब तक चोर नहीं पकड़ा जाएगा, मुझे एक क्षण का भी चैन नहीं है। शीघ्र ही कोई

मार्ग खोजा जाये।"

मन्त्री ने कुछ चिन्तन के बाद कहा—"इस कार्य में अनेक धर्माचार्यों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। वे मन्त्र-विद्या में निष्णात होते हैं। उनका ज्ञान भी प्रौढ होता है। इस उलझन पूर्ण पहेली का सम्भवत वे समाधान दे सके।"

राजा को मन्त्री का सुझाव समुचित लगा। उसे तत्काल क्रियान्वित किया गया। अनेक धर्माचार्यों को ससम्मान आमन्त्रित किया गया और उन्हें चोर को पकडने मे सहयोग के लिए विनम्र निवेदन किया। धर्माचार्यों ने उस प्रस्ताव को स्वीकार किया और मन्त्र-बल से प्रस्तुत काय के लिए उद्यत हुए। पर, सहस्रमल्ल इतना कुशल था कि वह किसी की भी पकड में नहीं आया, अपितु उसने उन सबको ही छल लिया।

सहस्रमल्ल अपने काम में सफल था, अत उसका पौरुप दुगुना बढ गया। उसने प्रतिदिन चोरी आरम्भ कर दी। जहाँ जी चाहता, वह सेंध लगाता और हजारो लाखो की सम्पत्ति बटोर लाता। कोई उसका सामना करता, वह उसे मौत के घाट पहुचा देता। स्त्रियों पर भी वह बलात्कार करते हुए नही चूकता

था । उसे मनमानी करने की पूरी स्वतन्त्रता हो गई । राजा और मंत्री की चिन्ता बढती ही गई । एक चोर उनके नाको में इस प्रकार दम ले आयेगा, यह कभी सम्भावना नही की जा सकती थी पर, हुआ वैसे ही ।

निराशा मे भी आशा की एक किरण फूटी । उन्ही दिनो विशुद्ध नामक केवली का वहा शुभागमन हुआ । उन्हे वन्दना करने व उनकी पर्युपासना करने के लिए राजा व सहस्रों नागरिक गये । सहस्रमल्ल चोर भी अन्य वेष मे वहां आया । केवली विशुद्ध ने देशना दी । उनका मुख्य उपदेश था; हिसा करना, असत्य बोलना, किसी के ब्रह्मचर्य का विनाश करना, महारम्भ मे ही आसक्त रहना पापात्मा का लक्षण है । वह दूसरो के साथ ऐसा करता है, पर, उसे सोचना चाहिए, जो मेरे लिए दुःखद है; वैसा व्यवहार दूसरे के साथ भी नहीं होना चाहिए । व्यक्ति स्वय सुख चाहता है, तो उसे दूसरे के सुख को लूटने का भी क्या अधिकार है ?

प्रवचन ने सभी के हृदय झकझोर डाले । पापात्मा सहस्रमल्ल भी सिहर उठा । उसकी आत्मा चीख उठी । पापो के प्रति सहज ग्लानि हुई । उसके मन मे एक ही

प्रश्न टकरा रहा था, मैंने घोर पाप कमाये हैं। उनसे छुटकारा कैसे होगा ? मैंने दूसरों को लूटा ? नही, नही, वस्तुत मैं ही लूटा गया। अपने द्वारा इस प्रकार लूटा जाना बहुत ही दु खद है। पापी जब तक पाप में रहता है, बहुत कठोर होता है, किन्तु, जब उसकी उससे घृणा हो जाती है, वह अतिशय मृदु भी बन जाता है। सहस्रमल्ल अन्तर्मुख हो गया। उसे अपनी ही प्रवृत्तिया कचोटने लगीं। उनका समाधान पाने के लिए वह विशुद्ध केवली के समीप आया, जबकि अन्य सभी नागरिक वहा से जा चुके थे। उसे अभी भी भय था। फिर भी उसने साहस बटोरा। उसने प्रार्थना की—"भगवन् ! ऐसा कोई अकृत्य नही है, जो इन हाथो से अछूता रहा हो। अकृत्यो में ये हाथ कुशल थे, कभी सकुचाते न थे। आपकी वाणी ने उन्हें आज स्तब्ध कर दिया है। जो पत्थर हृदय कभी नहीं पिघला, वह आज निर्झर की तरह बह रहा है। मेरा उद्धार कैसे हो सकेगा ? मैं मार्ग-दर्शन चाहता हू।"

विशुद्ध केवली ने कहा—'क्रूरकर्मा के लिए धार्मिक अनुष्ठानों में भी उग्रता व त्वरता अपेक्षित है। सयम के द्वारा आत्मा को भावित करो और निर्मल

बनो।"

सहस्रमल्ल ने विनत भाव से निवेदन किया—"जो निर्देश है, उसके लिए प्रस्तुत हूं, किन्तु, एक प्रार्थना है, आप यहा से शीघ्र ही अन्यत्र पधारे और वहां मुझे सयम प्रदान कर कृतार्थ करे। यहां यदि राजा को मेरे बारे में ज्ञात हो जायेगा, तो साधना मे विघ्न हो जायेगा; क्योंकि मै यहा का कुख्यात चोर हू। मैने राजा, मन्त्री व हजारो व्यक्तियों की आखो मे धूल झोकी है।"

विशुद्ध केवली ने कहा—"जब तक भय है, साधना नही हो सकती। तुझे राजा व नागरिकों से कतराने की आवश्यकता नही है। तुझे अपने प्राचीन कार्यो की आलोचना करनी है। सच्चे दिल से की जाने वाली आलोचना अच्छा रग लाती है। उससे सदैव लाभ ही होता है। विरोधी की भावना भी उससे बदल जाती है। वर्षो का वैर धुल जाता है। तुम कल देशना के समय आओगे ही। उसी समय अवसर पाकर पूर्व कर्मो की तुझे आलोचना करनी है और सयम ग्रहण करना है।"

सहस्रमल्ल ने सब शिरोधार्य किया। दूसरे दिन पुन परिषद् जुडी। राजा और हजारो नागरिक वहां

आये। सहस्रमल्ल भी आया और केवली के समीप ही बैठ गया। विशुद्ध केवली ने देशना के माध्यम से श्रोताओ के अतीत, अनागत व वर्तमान के सन्देह दूर किये। राजा ने पूछा—"भगवन् ! एक चोर ने हम सब को तग कर रखा है। हमने उसे पकडने के लिए अनेक प्रयत्न किये, पर, सफलता नही मिली। वह कहा है और हम कैसे उसे पकड सकते हैं, कृपया प्रकाश डालें।"

विशुद्ध केवली ने कहा—"राजन् ! अब वह चोर नही रहा। तुम्हारे नगर का सकट दूर हो गया है। तुम्हें अनेक प्रयत्नों के बाद भी सफलता नही मिली, पर, अब चिन्ता की बात नहीं है। वह चोर भी साहूकार बन गया है।"

राजा स्पष्टता से समझ नही पाया। उसने पूछा—"भन्ते ! यह कैसे हुआ ?"

विशुद्ध केवली ने कहा—'उसका हृदय परिवर्तित हो चुका है। वह अपने कृतकर्मों का अनुताप कर रहा है और उन्हें तप की भट्टी में भस्म करने के लिए चारित्र ग्रहण को उद्यत हो रहा है। वह तुम्हारे वाम पार्श्व मे ही बैठा है। तुम उसके प्रति रहे हुए रोष

को हटाओ और उसकी संयम-भावना की अनुमोदना करो।"

राजा और सहस्रमल्ल दोनों परस्पर मिले। सहस्र-मल्ल ने जब राजा से क्षमा-याचना की, राजा की आंखों से अश्रु-धारा बह चली। एक-दूसरे को टेढ़ी नजरों से देखने वाले परस्पर स्नेहार्द्र होने लगे। राजा उसे अपने साथ राजमहलों मे ले गया। सहस्रमल्ल ने कहा—"आप भी मेरे घर पधारें। मैंने जो भी धन चुराया है, वह आपके चरणों मे प्रस्तुत है। उसे उसके मालिकों को आप लौटा दें। मेरा अब इस धन मे कोई आकर्षण नहीं है।" राजा ने सारा धन सबको लौटा दिया।

सहस्रमल्ल मां के साथ विशुद्ध केवली के चरणों में उपस्थित हुआ। उत्कट वैराग्य से भावित होते हुए उसने माता के साथ संयम ग्रहण किया। पूर्वार्जित पाप-कर्मों के क्षय के लिए मासखमण तप का अभिग्रह धारण किया। जिस शरीर का उपयोग कर्म-बन्धन में होता था, उसका उपयोग कर्म-मुक्ति मे होने लगा। दलिक कर्मों का बहुत सचय था, पर, तप के समक्ष वे कब तक टिक पाते थे। क्रमश. आत्मा शुद्ध होती गई। विशुद्ध अध्यवसाय, निर्मल परिणाम और शुभ लेश्या से उसने

कर्मावरणों का विलय किया और केवल ज्ञान प्राप्त किया। कुछ समय तक भूतल को पावन करते हुए विहरण करते रहे। क्रमश योगों का निरोध किया और शैलेशीकरण से निर्वाण को प्राप्त हुए।

●

: २

सारण

अवन्ति मे सारण द्यूतकार रहता था। जूए का वह बहुत बडा व्यसनी था। सारी सम्पत्ति उसने जूए में स्वाहा कर दी। खाने-पीने के भी लाले पड गये। पूंजी के अभाव में वह व्यवसाय भी नही कर सकता था। उसने चोरी करना आरम्भ कर दिया। एक दिन वह एक वणिक् के घर पहुंचा। वहां पिता-पुत्र परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। सारण छुपकर उसे सुनने लगा। सेठ ने अपने पुत्र से कहा—"दश हजार स्वर्ण-मुद्राएं हमे निधान में रखनी है। आपत्ति के समय हम उनका उपयोग कर सकते है। पुत्र ने सेठ के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए प्रश्न किया—"ऐसा निरापद् स्थान कौन-सा होगा ?" सेठ ने चिन्तन के बाद उत्तर दिया—"इसके लिए श्मशान ही उपयुक्त है।" सारण तत्काल वहा से चलकर श्मशान मे आ गया। योगी की तरह

श्वासोछ्वास का निरोध कर वह वही एक ओर लेट गया। देखने पर ऐसा ज्ञात होता था, जैसे कि शव ही पडा हो। सेठ और उसका पुत्र, दोनो श्मशान मे आये। सेठ ने पुत्र से चारों ओर अच्छी तरह देखने के लिए निर्देश दिया। सेठ दूरदर्शी था। उसका चि तन था, यदि कोई यहा छुपा हुआ होगा, तो सारी ही भावी योजना ढह जायेगी। पुत्र ने चारों ओर चक्कर लगाये। उसे कोई भी अक्षत शरीर दिखाई नही दिया। पुत्र घूमता हुआ सारण के पास पहुच गया। उसने उसे खूब गौर से देखा। हाथ, पैर, नाक, मुह आदि सभी देखे। उसे उलट पुलट कर भी देखा, पर, उसके प्राण-शून्य होने के ही प्रमाण मिले, पर, उसका शरीर अक्षत था। उसने सेठ को सारी स्थिति बतलाई। सेठ ने तत्काल कहा—"सम्भव है, यह कोई महाधूर्त हो, अत तू पुन जा और उसका अच्छी तरह परीक्षण कर।" पुत्र वहां आया। सावधानी-पूवक उसने उसे देखा। उसे अपना पूर्व निणय ही सम्यक् लगा। निर्णय की परिपक्वता के लिए उसने उसे पाव पकड कर घसीटा भी। सारण कष्ट सहता रहा, पर, उसने श्वासोछ्वास को रोके ही रखा। उसने यह व्यक्त होने नही दिया कि वह जीवित है। पुत्र ने आकर

पुनः सेठ को सारी स्थिति से अवगत किया। सेठ ने कहा—"निश्चित ही यह कोई धूर्त है। हमे ठगने के लिए इसने कोई जाल बिछाया है। तू एक बार पुन जा और उसके नाक, कान काट ला। यदि वह बनावटी रूप से मृत है, तो नाक, कान कटते ही चिल्ला उठेगा और यदि वस्तुत. मृत है, तो कुछ भी नही करेगा। हम पूर्णतः विश्वस्त व निर्भय हो जाएगे।" पुत्र ने वैसा ही किया। धन के प्रलोभन से सारण वहां से नही हिला। पुत्र ने सेठ से सारी स्थिति निवेदित की। सेठ को निश्चय हो गया, वह मृत ही है। खड्डा खोदा, धन गाड़ा और दोनो ही घर लौट आए। द्यूतकार सारण वहां से उठा और धन लेकर अपने घर लौट आया।

सेठ ने एक बार पुत्र को धन के अवलोकन के लिए भेजा। उसने चिह्नित स्थान को खोदा, पर, वहां कुछ भी नही था। दूसरे दिन सेठ स्वयं भी गया। उसे भी धन नही मिला। खिन्नमना वह घर लौट आया। पुत्र से उसने कहा—"निश्चित ही वह धूर्त था। वह मृत नही था। उसने धन हडपने के लिए ही वह सब जाल रचा था। कान, नाक के कर्तन का कष्ट भी उसके लिए नगण्य हो गया। अब हमें शहर में ऐसे

मारण भी खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने अपने को छुपाने का अनधिकृत प्रयत्न नहीं किया। उसने संक्षेप में यही कहा— 'धन के लिए क्या क्या नहीं सहा जाता।

व्यक्ति को खोजना चाहिए, जो नाक, कान विहीन हो। इस प्रकार हम सहज ही उसका पता लगा सकेगे।

खोजने वाला पा ही जाता है। एक दिन सेठ को सारण मिल ही गया। उसे पहचानने मे सेठ को विशेप श्रम नही करना पडा। हाथ पकड कर सेठ उसे एकान्त मे ले गया। उसके प्रति आत्मीयता व्यक्त करते हुए उसने विनोद मे कहा—"तुम तो वडे ही पौरुपशाली हो। इतना दुष्कर कार्य हरएक व्यक्ति नही कर सकता। मै जानता हूं, तुम्हारे नाक, कान क्यो काटे गये है?"

सारण भी खिल-खिलाकर हस पडा। उसने अपने को छुपाने का अनधिकृत प्रयत्न नही किया। उसने सक्षेप मे यही कहा—"धन के लिए क्या-क्या नही सहा जाता।"

सेठ ने वात को समेटते हुए कहा—"वीर! अव जो कुछ तेरे पास वचा है, वह तो मुझे दे दो।"

सारण ने कहा—"वह धन आपके लिए प्रस्तुत है, पर, राजा के कानो मे इसकी भनक न आने पाये।"

सेठ ने सारण को सन्तुष्ट किया और सारण ने सेठ को वचा हुआ धन लौटा दिया।

०

३

धिष्ट

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अवन्ती देश था। वहा धारा नगरी में राजपुत्र सूर रहता था। उसकी पत्नी का नाम चतुरा था। वह बहुत ही चण्ड थी और कसैले शब्दों का प्रयोग करती थी। सूर बहुत दु खित था। उसने उसके स्वभाव-परिवर्तन के नाना उपक्रम किये, पर, तनिक भी सफलता नहीं मिली। उसके कारण वह सदैव दु खी रहता था। उससे छुटकारा पाने के लिए उसने दूसरा विवाह करने का निश्चय किया। समीपवर्ती ग्रामों व नगरों में घूमता हुआ वह अवन्ती में एक वृद्धा के घर पहुचा। उसके एक युवती कन्या थी। उसका नाम सुन्दरी था। सूर ने उसे अपने लिए मागा। वृद्धा ने शर्त प्रस्तुत की—"मैं अपनी कन्या का विवाह उस युवक के साथ करूंगी, जो मुझे भी अपने पास रख सके। मेरे जीवन का आधार यह कन्या ही है।"

सूर ने उस शर्त को स्वीकार कर लिया। विवाह कर वह अपनी नई पत्नी सुन्दरी के साथ घर आया। चतुरा ने जब यह जाना, तो उसे बहुत दुःख हुआ। किन्तु, अब उपचार भी क्या हो सकता था? चतुरा ने सुन्दरी के साथ कलह आरम्भ कर दिया। वह उसे जब-तब कष्ट ही देती रहती। नव परिणीता सुन्दरी अत्यन्त खिन्न हो गई। कुछ दिन तक वह शान्त रही, किन्तु, फिर उसने भी ईंट का जवाब पत्थर से देना आरम्भ कर दिया। सूर ने कलह की उपशान्ति के लिए दोनो के लिए पृथक्-पृथक् मकानो की व्यवस्था कर दी। किन्तु, चतुरा को फिर भी चैन नही था। वह उसके घर पर जाकर झगड़ने लगी और उसे भद्दी-भद्दी गालियां भी देने लगी। स्थिति नियंत्रण से बाहर हो गई। दोनो का कलह उग्र रूप लेने लगा। प्रतिदिन दोनों में मुक्केबाजी होती, एक-दूसरी को दान्तो से काटती और नाखूनों से भी खरोंच डालती। पड़ोसी उन्हे दूर करते, पर, चतुरा का रोष शान्त नही हो पाता।

सूर ने सुन्दरी को चतुरा से दस कोस दूर वसा दिया। उसकी मां भी उसके पास रहने लगी। सूर समय-समय पर उसके पास आता-जाता रहता था।

चतुरा को यह भी खलने लगा। वह इसके प्रतिकार के लिए भी उपाय खोजने लगी। एक दिन सूर ने चतुरा के समक्ष सुन्दरी के घर जाने का विचार व्यक्त किया। चतुरा ने कृत्रिम स्नेह दिखाते हुए कहा—"आप अवश्य जाये। सुन्दरी मेरी ही तो बहिन है। उसे आप सब प्रकार से प्रीणित करें और शीघ्र ही पुन घर पधारे। चतुरा ने मन्त्रित चूर्ण से भावित कुछ मोदक सूर को पाथेय के रूप में दिये।

चतुरा का स्नेह देख कर सूर को आश्चय हुआ। वह वहा से चल पडा। माग में नदी के तट पर उसने विश्राम किया। स्नान आदि क्रियाओ से निवृत्त होकर मोदकों का भोजन किया। मन्त्र-प्रभाव से वह कुत्ता हो गया। सूर सुन्दरी के घर नहीं गया। वहीं से पुन घर लौट आया। चतुरा ने उस कुत्ते को दृढ बन्धन से बाध दिया और अतिशय पीटते हुए उसने कहा—"क्या पुन भी तू सु दरी के घर जायेगा?" सूर के साथ उसने कई दिन तक ऐसा ही क्रूर व्यवहार किया। जब वह मृतप्राय हो गया, उसने उसे छोड दिया और पुन पुरुष बना दिया। सूर ने उपचार किये। एक महीने तक नाना औषधियों के प्रयोग से वह स्वस्थ हुआ।

स्नेही के प्रति अव्यक्त आकर्षण कभी न्यून नही

होता । सूर का मन सुन्दरी से मिलने के लिए अकुलाने लगा । उसने एक दिन चतुरा से फिर कहा—"मैं सुन्दरी के घर जाना चाहता हूं, अत. पाथेय तैयार करो ।" चतुरा का रोष उभर आया । उसने करम्ब को मन्त्र से भावित कर सूर को दिया । सूर उसी नदी के तट पर भोजन करने के लिए बैठा । सहसा एक जटाधारी संन्यासी वहा आ पहुचा । उसने सूर से कहा—"मै दो दिन से भूखा हू; अतः यह करम्ब मुझे दे दो ।" सूर को उस पर करुणा आ गई । उसने उसे दे दिया । सन्यासी रासभ हो गया और रेंकने लगा । वह चतुरा के घर की ओर चला । सूर भी उसके पीछे-पीछे चल दिया ।

चतुरा ने सूर को ही रासभ समझा; अतः वह उसे दृढ बन्धन से बांध कर पीटने लगी । रासभ पचम स्वर मे रेंकने लगा । चतुरा भी उसे, क्यो फिर भी सुन्दरी के घर जायेगा; वार-वार कहती हुई, उसकी भर्त्सना करने लगी । वह भी जव मृतप्राय. हो गया, उसने उसे छोड़ दिया । ज्यो ही वह जटाधारी सन्यासी हुआ, उसे देखकर चतुरा भीत हुई । वह उसके चरणो मे गिर पडी और कातर भाव से पुन.-पुन. क्षमा-याचना करने लगी । संन्यासी ने कहा—"लोकोक्ति सत्य हुई है, जो करम्व खाता है, उसे विडम्वना भी सहनी पडती है !"

चतुरा ने सन्यासी को बहुत सारा धन देकर सन्तुष्ट किया और घर से विसर्जित किया।

पापी की आत्मा कराहती रहती है। उसको प्रतिक्षण यह चिन्ता सताती रहती है, कहीं मेरी कलई खुल न जाये। चतुरा को भय कचोटने लगा। उसने सोचा, सूर का मेरे प्रति अब कोई स्नेह नहीं रहेगा, क्योंकि मेरी हरकतों से वह परिचित हो चुका है। स्नेह-शून्य जीवन भार है, अत यदि किसी प्रकार से सूर को समाप्त कर दिया जाये, तो कितना सुन्दर हो। उसने एक अनुष्ठान किया और उसमें उसे सफलता भी मिली। स्नान करने के अनन्तर उसने गोमय से एक मण्डल बनाया, नैवेद्य उपहृत किया और शुद्ध वस्त्र पहिन कर होम करने लगी। होम की समाप्ति पर एक राक्षस सर्प के आकार में प्रकट हुआ। उसने चतुरा से कहा—"तूने मेरा स्मरण किस प्रयोजन से किया है? मैं तेरे पर प्रसन्न हू। जो चाहे, वरदान माग सकती है।"

चतुरा की कामना पूर्ण हो गई। उसने तपाक से कहा—"मेरा पति लम्पट है। मैं यह सह नहीं सकती। आप उसे जीवन-मुक्त कर दें।"

सर्प ने कहा—"तेरा अभिप्रेत फलित हो जायेगा,

किन्तु, कुछ समय लगेगा। छः महीने की अवधि समाप्त होते ही तेरा पति मर जायेगा।"

चतुरा को बडी प्रसन्नता हुई। उसने यक्ष को ससम्मान विसर्जित कर दिया।

सूर ने दीवाल की ओट से यह सारा वृत्तान्त देखा। वह अत्यन्त विस्मित हुआ। उसके मुंह से सहसा ये शब्द निकल ही पड़े—"औरतो का चरित्र गहन होता है। उसे ब्रह्मा भी जान पाये या नही भी। उसने चतुरा को पीठ दिखा दी। वहां से सुन्दरी के आवास पहुचा और वही स्थायी रूप से रहने लगा। सुन्दरी गीत, हास्य आदि के माध्यम से सूर को अनु-रजित करने का प्रयत्न करती, पर सूर का मन उचटा हुआ ही रहता।

परिवार के बीच रहने वाला कोई व्यक्ति अन्य-मनस्क रहता है, तो अन्य व्यक्तियो का आनन्द भी किर-किरा हो जाता है। एक दिन सूर की सास ने उसका कारण पूछा। सूर ने निराशा के स्वरो में कहा—"अस-मर्थ के समक्ष दु:ख उगलने से फलितार्थ क्या होगा?"

सास ने स्वाभिमान के साथ कहा—"कभी-कभी निजी व्यक्ति के अंकन में यथार्थता ओझल भी हो जाती है। तुम मुझे बताओ तो सही। सम्भव है,

व्याधि का सही निदान होने पर उसका समुचित उपचार भी हो सके।"

सूर का दिल भर आया। उसने अपनी आहों को रोकने का प्रयत्न किया, पर वे रुक न पाईं। उसने अथ से अब तक का सारा उदन्त सुना दिया और कहा—"छ महीने बाद मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है।"

सास ने विहस कर कहा—"तुम निश्चिन्त रहो। इसका तो मैं समुचित प्रबन्ध कर दूगी। तुम आनन्द से रहो। तुम्हारे साथ मेरी पुत्री का भी तो भाग्य जुडा हुआ है।"

सूर कुछ-कुछ आश्वस्त हुआ, किन्तु, सवथा निभय नहीं हुआ। जब-तब उसके कानों में चतुरा के वाक्य टकराते, वह सिहर उठता।

सुन्दरी और उसकी मां ने घर की दीवाल पर दो मोर चित्रित कर दिए। वे यथाथ जैसे लगते थे। माता और सुन्दरी पवित्र होकर प्रतिदिन मोरों की पूजा करती थी। छ महीने पूरे हो गए। अन्तिम दिन था। सूर का दिल दहल रहा था। उसने सुन्दरी से कहा—"आज का दिन खतरनाक है। मेरी मृत्यु में सन्देह नही है। ज्यों ही यह स्मृति होती है, कलेजा, मुह को आने लगता है।"

सुन्दरी ने कहा—"आप हमारा सामर्थ्य देखे। भय न करे। कोई मारने वाला है, तो कोई मृन्यु से बचाने वाला भी है। मारने वाले से बचाने वाला बडा होता है।" सुन्दरी ने गोमय से सारे घर का विलेपन किया। मध्य भाग मे एक आसन स्थापित किया और वहा सूर को बिठा दिया। माता और पुत्री ने पवित्र वस्त्र पहने, हाथ में अक्षत लिए और इधर-उधर देखने लगी। एक काला सांप निकला। दोनो ही सावधान थी। चित्रित मोर पर उन्होने अक्षत डाले। मोर दीवाल से नीचे उतर आया। उसने सर्प् को पकडा और दो टुकडे कर डाले। उसी क्षण वह केका करता हुआ सर्प को अपने मुख से पकड कर आकाश मे अदृश्य हो गया। सूर ने चकित नेत्रों से वह सारी घटना देखी। उस पर यह प्रभाव पडा कि मा और बेटी की मत्र-शक्ति अमोघ है। उसने स्नान किया। उसे लगा, जैसे कि नया जीवन ही मिला है। उसने याचको को मुक्त-हस्त से दान दिया।

चतुरा का वाण चूक गया था। वह इसी संघटना मे रहती थी कि जैसे-तैसे सूर को समाप्त किया जा सके। एक पथिक उसी ग्राम से आया। चतुरा ने सूर के वारे मे उससे पूछा। उसने वताया, वह तो आनन्द

में है। प्रतिदिन अनेकानेक याचको को दान देता रहता है। चतुरा का खून खोल उठा। उसने सफेद बिल्ली का रूप बनाया और सुन्दरी के मकान पर पहुच गई। कर्ण-कटु शब्दों में वह चीखने लगी। माता व सुन्दरी ने उसे देखा, तो उन्होंने कृष्ण बिल्ली का रूप बनाया। दोनों ओर से युद्ध छिड गया। नख आदि से वे एक-दूसरी पर प्रहार करने लगी। लम्बे समय तक उनका वह सघप चलता रहा। पर, दोनों का बल उस अकेली के सामने न्यून हो गया। उसने अपने मन्त्र-बल का प्रयोग किया, दोनों को क्षत-विक्षत किया और नृत्य करती हुई आकाश मार्ग से चली गई।

सूर के लिए यह सारा रहस्य अज्ञात था। उसने दोनों से जब पूछा, तो उन्होंने स्मित हास्य के साथ बताया—"यह सफेद बिल्ली आपकी प्रिया चतुरा ही थी। हम दोनों के साथ झगडने के अभिप्राय से वह आई थी। उसकी मन्त्र-शक्ति हमारी मन्त्र शक्ति से विशेष है, अत वह हमें पराजित कर दौड गई।"

सूर का दिल पुन धडकने लगा। वह सोचने लगा, मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि मैं इन शाकिनियो के चगुल में ही फसता जा रहा हू। एक शाकिनी को छोडकर आया और दो ने मुझे घेर लिया है। क्या करना

चाहिए, जिससे मै इनसे मुक्त हो सकू । चिन्ता में ही उसका समय बीत रहा था । महीने की अवधि समाप्त हुई । चतुरा पुनः सफेद बिल्ली का रूप बनाकर पहुंच गई । मां-बेटी ने काली बिल्ली का रूप बनाया और उसके साथ डट गईं । बहुत समय तक संघर्ष होता रहा । इस बार भी मां-बेटी के हाथ पराजय ही लगी। चतुरा चली गई । सुन्दरी सूर के पास आई । उसने कहा—"इस वार जब चतुरा सफेद बिल्ली बनकर आए, आपको हमारे सहयोग मे उतरना होगा ।" सूर थोडा सकुचाया । आपको केवल इतना ही कहना होगा, काली बिल्लियो ! इस श्वेत बिल्ली को मार डालो । इतना कहते ही हमारी शक्ति उससे वढ जायेगी और हम उसे धराशायी कर देगी ।"

चतुरा को दो बार सफलता मिल चुकी थी; अतः उसका साहस भी वढ गया था । उसने तीसरी वार भी सफेद विल्ली का रूप बनाया और उन दोनो के साथ झगडना आरम्भ कर दिया । सूर ने तत्काल कहा— "काली विल्लियो ! सफेद बिल्ली को मार डालो ।" उसी क्षण सफेद विल्ली भूमि पर गिर पडी । दोनो काली विल्लियो ने उसकी गर्दन दबोच डाली । उसके प्राण कण्ठो में आकर अटक रहे थे । सूर ने सोचा,

मेरे सौभाग्य से यदि कथन मात्र से सफेद बिल्ली मर सकती है, तो क्या काली बिल्लियां भी नहीं मर सकतीं। यदि मर जायें, तो मैं संकट-मुक्त हो जाऊँ। उसने तत्काल कहा—"श्वेत बिल्ली! तुम भी काली बिल्लियों को मार डालो।" उसी क्षण वे दोनों बिल्लियां गिर पड़ीं और सफेद बिल्ली ने उनको मार डाला। दूसरे ही क्षण वह सफेद बिल्ली भी मर गई। सूर ने तीनों की अन्त्येष्टि-क्रिया की और घर से निकल पड़ा। अग्रज के घर पहुंचा। अग्रज बाहर गया हुआ था। उसने भाभी को प्रणाम किया और भाभी ने उसका सम्मान किया।

व्यक्ति जिससे दूर भागता है, बहुधा उसका उससे ही पाला पड़ जाता है। एक दिन भाभी सूर के मस्तक में तेल डालकर कथा कर रही थी। खेत से हल जोतने वाला आया। उसने कहा—"मिंढ नामक बैल मर गया है। उपयोगी समय बीत रहा है। एक बैल की आवश्यकता है।" भाभी ने सूर के सिर पर अभिमन्त्रित चूर्ण डाला। वह तत्काल बैल हो गया। हल जोतने वाले ने रस्सी से उसे बांधा और खेत में ले आया।

मनुष्य यदि बैल बन जाता है, तो उसको कितना दुःख होता है, यह वही जान सकता है। सूर दुःख में

हो दिन गुजारने लगा। एक दिन उसकी नाथ टूट गई। मत्र का प्रभाव जाता रहा। सूर पुनः पुरुष हो गया। हली उसे पकड न ले, अत आँख बचाकर वह वहा से भाग निकला। अग्रज उसे मार्ग मे मिला। अनुज का व्रण आदि से जर्जरित शरीर देखकर उसे चिन्ता हुई। उसने उसका निमित्त पूछा और घर चलने का आग्रह किया। सूर ने व्यग कसते हुए कहा—"बन्धुवर ! वह घर तुम्हे ही मुबारिक हो ! भाभी तो प्रत्यक्ष शाकिनी है। उसने मुझे बैल बनाकर हल में जोता। ये घाव उसी के सूचक है। अब तो मै तुम्हारे घर उसी दिन आऊँगा, जब मुझे बैल बनना होगा। मै अपना जीवन वन मे व्यतीत करना चाहूंगा। सभी घर शाकिनियो से भरे पडे है।"

सूर निर्भय होकर वन मे आगे बढ गया। वन की भयानकता बढती गई। उसे छ पुरुष मिले। वे नाना आभूषणो से सज्जित थे, किन्तु, उनके सिर पर घास के गट्ठर थे। सूर को वहुत आश्चर्य हुआ। उसने उनसे उसका कारण पूछा। उन्होने उत्तर मे कहा—"इस वन खण्ड में एक वृद्धा रहती है। वह शरीर से जर्जर है, पर परम दयालु है। वह हमारे द्वारा घास के गट्ठर मगवाती है और हमे नये-नये वस्त्र व वहुमूल्य आभू-

पण देती है। हमारा जीवन सुख में व्यतीत होता है।"

सूर ने कहा—"मैं भी वृद्धा के दर्शन से कृत कृत्य होना चाहता हूं। क्या आप मुझे अपना साथी बना सकते हैं?" उनसे स्वीकृति पाकर उसने भी घास का गट्ठर उठाया और उनके साथ हो गया। सभी वृद्धा के पास पहुंचे। वृद्धा ने एक अपरिचित पुरुष देखा तो उसके बारे में छहों से पूछा। उन्होंने बताया—"हमें यह वन मे मिला था। इसका नाम धिष्ट[1] है। आपकी चरण-सेवा के लिए प्रस्तुत हुआ है। आप इसे अवसर प्रदान कर अनुगृहीत करें।"

वृद्धा के नेत्र खिल उठे। उसने धिष्ट की पीठ थपथपाई और कहा—"बेटे! तुम तो बड़े कृश हो? मेरे पास सुख से रहो और जीवन का आनन्द लूटो।"

धिष्ट की आंखें छलछला आई। उसने कहा—"मां! मैं बड़ा दुःखी हूं। जीवन में ठोकरें खाते हुए इस कगार तक पहुंचा हूं। मैं चाहता हूं, शेष जीवन तुम्हारे चरणों में ही व्यतीत हो।"

वृद्धा ने स्नेहिल नेत्रों से धिष्ट की ओर देखा। धिष्ट निहाल हो उठा। उसने उसे स्नान करवाया,

---

१ सूर ने अपना नाम बदल कर धिष्ट रख लिया।

पहनने को नये वस्त्र दिये और सुस्वाद भोजन करवाया है।

जिज्ञासा सदैव नये आयाम खोलती है। धिष्ट ने सोचा, घास के इन गट्ठरों का वृद्धा क्या करती है? इस तथ्य की आज खोज करनी चाहिए। धिष्ट अपने छः साथियों के साथ कपट निद्रा से सो गया। आधी रात के समय वृद्धा उठी। उसने सब तरह से परीक्षा की, कोई जग तो नही रहा है। उसे अनुभव हुआ, सभी गहरी नीद में सो रहे है। अपने मन्त्र-बल से वह घोडी बन गई। घास के गट्ठर निगल कर वह युवती बन गई। नाना आभूषणो से अलकृत होकर वह वहां से चल पडी। धिष्ट प्रच्छन्न रूप से उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। कुछ मार्ग तय कर वह एक गुफा मे पहुची। वहा कुछ योगिनियां थी। उन्होने उठकर उसका स्वागत किया, नमस्कार किया और उसकी सेवा मे लीन हो गई। योगिनियो ने अवसर देखकर पूछा—"हमारे लिए वलि की क्या व्यवस्था कीगई है? हम तो उसके लिए ही विशेप उत्सुक है।" युवती के रूप मे उस वृद्धा ने उत्तर दिया—"तुम थोडा धीरज रखो। मैंने तुम्हारे लिए सात पुरुषो की व्यवस्था की है। छ. पुरुप तो हृष्ट-पुष्ट है, पर, सातवा पुरुप दुर्बल व कृश है। वह

युवती के रूप में उस बढ़ा ने उत्तर दिया—'तुम थोड़ा धीरज रखो। मैंने तुम्हारे लिए सात पुरुषों की व्यवस्था की है।

दो-चार दिनों से ही हाथ लगा है । चतुर्दशी तक खिला-पिला कर उसे भी मांसल वना दूगी । वह भी तुम्हारे लिए हां होगा ।"

योगिनियां बहुत प्रसन्न हुईं । उन्होने उसके साथ भोजन किया । भोजन मे मुख्य रूप से मांस था । धिष्ट छुपकर वहा सब कुछ देखता रहा । युवती वहां से चली । अपने मूल स्थान पर पहुच कर वह पुनः वृद्धा हो गई और चारपाई पर लेट गई ।

धिष्ट सारी घटना को देखकर सिहर उठा । जिससे वचने को वह उतावला था, उसी से उसका पाला पड़ता जा रहा है । मृत्यु धिष्ट से आख-मिचौनी कर रही थी। रह-रह कर उसके मन मे विचार उभर रहा था, यह शाकिनी है और हमे विश्वास में लेकर मार डालेगी । प्रात. सातो ही घास लाने के लिए चले । वन मे पहुंचने पर धिष्ट ने अपने छहों साथियो को रात्रि की सारी घटना सुनाई । छहो ने उसका प्रतिवाद किया और कहा—"हमने तो आज तक उसकी ऐसी कोई भी हरकत नही देखी ।" धिष्ट ने कहा—"तुम तो मुग्ध-लुब्धक हो, अत. उसके चंगुल से नही निकल पाओगे, पर मैं तो एक क्षण भी रुकना नही चाहता ।" छहो साथियो ने कहा—"तुम एक दिन और ठहरो । आज

रात को हम सारे ही इस घटना का पता लगायेंगे। यदि यह घटना सत्य निकली तो हम छहो ही तुम्हारा साथ देंगे।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। दिन आनन्द से गुजर गया। रात को सातो ही व्यक्तियों ने कपट निद्रा से रहकर उसका चरित्र देखा। धिष्ट का कहना सही निकला। सातो ने उसके प्रतिकार की योजना बनानी चाही। धिष्ट ने प्रस्ताव रखा, ऐसी दुष्टा को तो मार ही डालना चाहिए। यह एक-दो के वश में नहीं आयेगी। हम सातो को ही एक साथ आक्रमण करना होगा। सातो ही सहमत थे। उन्होने एक साथ आक्रमण किया। दो साथियो ने उसके पैर पकडे, दो साथियों ने उसके हाथों को पकडा, दो साथियों ने उसका सिर पकडा और एक ने लाठी से इतना अधिक पीटा कि वही उसकी मृत्यु हो गई। सातो निभय हो गये। उन्होंने वहा से एक साथ ही प्रस्थान किया। वे चलते हुए एक गहन विपिन मे पहुच गए। सिप्रा नदी थी। उसके तट पर एक नगर बसा हुआ था। नगर की रमणीयता दर्शनीय थी, किन्तु, वह वीरान था। किसी मनुष्य का दर्शन भी वहा दुलभ था। सातो ने ही नगर मे प्रवेश किया। शहर की शोभा और विजनता को

देखकर वे चकित हो रहे थे। घूमते हुए वे राजमहल के द्वार पर पहुंच गये। वहां एक वृद्धा बैठी थी। उसकी नाक कटी हुई थी। वृद्धा ने आगे बढ कर उनका स्वागत किया और कहा—"यहा सात कन्याएं है। तुम उनको स्वीकार करो।"

धिष्ट ने आगे होकर कहा—"मा ! यह तो बतलाओ, ये कन्याएं कौन है और कहां से आई है ? यह नगर तो सर्वथा वीरान है। इसमें सात कन्याओ की उपस्थिति विस्मय-कारक है।"

वृद्धा ने कहा—"ये विद्याधर-कन्याए है। एक दिन विद्याधर ने नैमित्तिको से इनके वर के बारे मे पूछा। नैमित्तिक ने बताया, इस नक्र-विहीना को तुम अपनी सातो कन्याएं दे दो। इनके वर स्वय ही इनके पास चले आयेंगे। मैने इनको तुम्हारे लिए सुरक्षित रखा है। तुम इन्हें स्वीकार करो।"

वृद्धा ने आगे कहा—"ये सुकोमल शय्या से युक्त पल्यक है। ये चित्रशालाए है, ये अपवरक (शयन-गृह) है। तुम यहां रहो और कन्याओ का उपभोग करो। सात पवन वेग घोडे है। ये भी नुम्हारे लिए है। तुम इन पर आरूढ होकर घूमा करो। सभी दिशाएं तुम्हारे लिए मुक्त है। किन्तु, पूर्व दिशा में कभी मत जाना।"

सातो ही साथियो ने वृद्धा का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वे वहीं रहने लगे। कन्याओं के साथ कभी वे झूलो पर झूलते, कभी उनके साथ उद्यान मे जाकर पुष्पो का चयन करते और कभी जल क्रीडा करते। एक बार सातो की गोष्ठी हुई। चिन्तन चला, वृद्धा ने हमें पूव दिशा में जाने के लिए निपेध क्यो किया? उस ओर जाकर भी देखना चाहिए कि, वहा क्या रहस्य है? सातों ही घोडों पर सवार होकर पूव दिशा की ओर चल पडे। कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा, एक योजन तक नर-मुण्ड ही नर-मुण्ड फैले हुए है। सातो ही उसे देखकर विस्मित हुए और एक दूसरे की ओर झाकने लगे। उसी समय घोडे का खुर एक खोपडी से टकराया। वह खिलखिलाकर हस पडी। उसने कहा—"इन घोडो और कन्याओ का उपभोग हमने भी कभी किया था।" धिष्ट को इस कथन पर बहुत आश्चय हुआ। उसने खोपडी से प्रश्नों की बौछार कर दी—"ये घोडे कौन है? ये कन्याए कौन हैं? यह वृद्धा भी कौन है? यह भूमि नर-मुण्डों से आकीण कैसे है?"

खोपडी ने उत्तर दिया—"यह नकटी वृद्धा सिद्ध शाकिनी है। उसने ही हम सबको मारा है। तुम भी

यदि अपना कुशल चाहते हो, तो यहां से भाग निकलो।"

सातों ही व्यक्ति भयभ्रान्त हो गए और वहा से दौड पड़े। मध्यान्ह तक वे दौड़ते ही रहे। पीछे मुडकर भी उन्होंने उनकी ओर नहीं देखा। किन्तु, जब वे लौटकर नहीं आए, तो सातों कन्याओं ने वृद्धा से कहा। वह चंग लेकर मकान पर चढ़ी। बहुत दूरी पर वे जाते हुए दिखाई दिए। डफ को सम्बोधित कर वह बोल पड़ी—"तू उनको लौटा ला।" और उसने डफ को पीटना आरम्भ किया। डफ का शब्द सुनकर घोड़े मुड गये, क्योंकि उन पर मन्त्र-प्रयोग किया जा चुका था। सातो ने ही घोड़ो से उतरने का प्रयत्न किया, पर, सारे ही विफल रहे। सातों ही घबरा गये। डोर के खीचने पर जैसे पतंग निकट आता चला जाता है; वैसे ही वे सातो नकटी वृद्धा के पास पहुंच गये। वृद्धा की भौहे तन गई। उनकी भर्त्सना करते हुए वह चीख पडी।—"मेरे चगुल से निकल कर तुम कहां जा रहे थे? जाओ तो सही, यदि तुम्हारे में शक्ति है।" उसने अपनी लपलपाती जीभ बाहर निकाली और तलवार हाथ मे लेकर धिष्ट पर टूट पडी। उसे भूमि पर गिरा दिया और उसके वक्ष-स्थल पर एडी जमाकर बोली—"घोड़े पर बैठकर बोल तू कहा जा रहा था?

अब मैं तुझे मारे बिना नहीं छोडूंगी। अपने इष्ट का स्मरण कर ले।"

धिष्ट एक बार घबराया, किन्तु, दूसरे ही क्षण साहसपूर्वक उसने उससे एक प्रश्न पूछा—"नकटी! तेरी नाक किस वीर पुरुष ने काट डाली।"

वृद्धा उस प्रश्न से बहुत हर्षित हुई। उसने उसे मुक्त करते हुए कहा—"भरत क्षेत्र में मनोरमा नगर है। राजा का नाम मनोरथ है। उसकी रानी का नाम मणिमाला है। मणिमाला ने सात पुत्रों को जन्म दिया। आठवीं बार एक कन्या आई। वह मैं ही हूं। मैं जब यौवन की देहली तक पहुंची, मन्त्र-तन्त्र आदि मे मेरी विशेष अभिरुचि हुई। मैंने क्रमश: वशीकरण, समोहन, स्तम्भन, उच्चाटन, राक्षसी विद्या, शाकिनी, मारण-विद्या, बलि-विधि, सूर्य-चन्द्र-ग्रह आदि को आकर्षित करने की विद्या, पाताल-प्रवेश, स्वर्ग-गमन आदि के महामन्त्रो की मैंने साधना की। मृत-संजीवनी आदि विद्याओं की भी मैंने साधना की। एक बार मैंने इन्द्र के महामन्त्र की साधना की। मेरी वह साधना सफल हुई। महामन्त्र के प्रभाव से मैं इन्द्र-भवन मे गई। इन्द्र के समक्ष हाहा, हूहू, तुम्बुरु, रम्भा आदि नाटक कर रहे थे। मैंने भी नाटक की विधि सीखी।
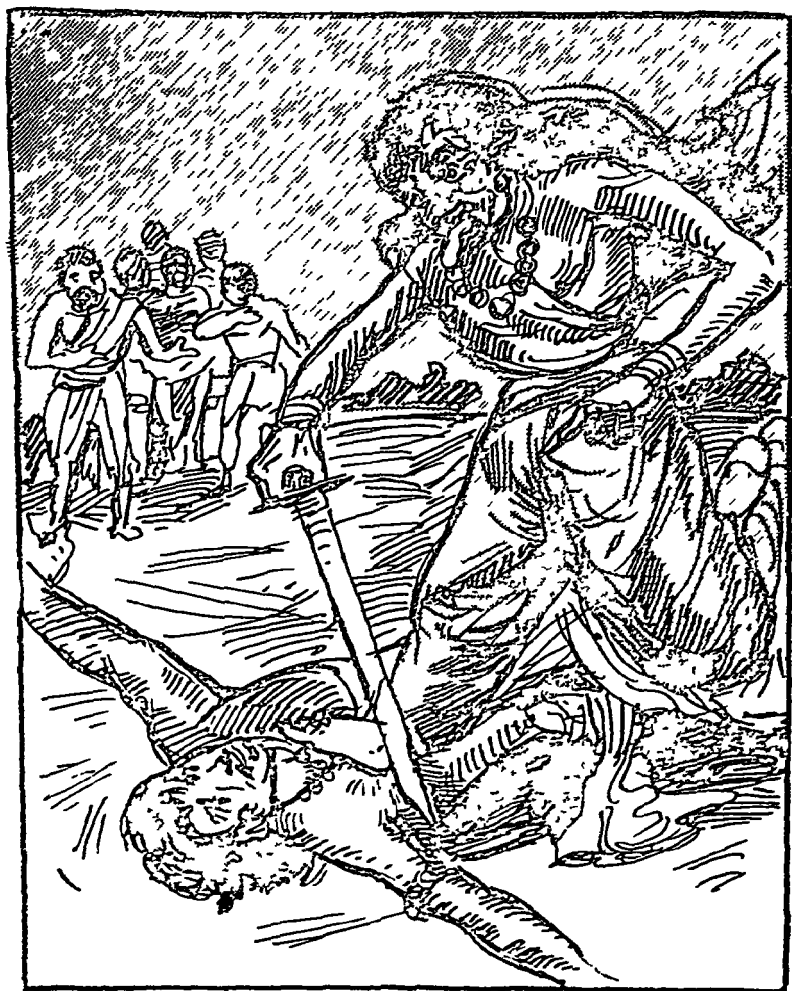
उसने अपनी लपलपाती जीभ बाहर निकाली और तलवार हाथ में लेकर विष्ट पर टूट पड़ी। उसे भूमि पर गिरा दिया और उसके वक्षस्थल पर एड़ी जमाकर बोली—"घोड़े पर बैठकर तू कहाँ जा रहा था? अब मैं तुझे मारे बिना नहीं छोड़ूँगी।"

एक दिन इन्द्र के समक्ष में नृत्य कर रही थी। इन्द्र मेरे पर प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे वर दिया। मैंने उनसे निवेदन किया—"आप मुझे पति के रूप में प्राप्त हो।" इन्द्र ने मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। इन्द्र के साथ मेरी घनिष्टता हो गई। मैं प्रतिदिन स्वर्ग जाने लगी और जीवन का आनन्द लूटने लगी।

जीवन में कभी-कभी उपस्थित होने वाला प्रसग किस समय क्या करवट लेता है, व्यक्ति को ज्ञात नही हो सकता। एक दिन माली ने स्वर्ग मे चलने और नाटक देखने का आग्रह किया। मैंने उसको बहुत निषेध किया, पर, वह अपने आग्रह से नहीं टला। मैंने उसका भ्रमर बनाया और धमिल्ल में लगा लिया। वह मेरे साथ स्वर्ग में गया। नाटक आरम्भ हुआ। मैंने अपनी पूरी शक्ति उसमे नियोजित कर दी। किन्तु, मैं भ्रमर के कारण भाराक्रान्त हो रही थी। खिन्न होकर मैंने अपने हाथ से सिर को सहलाया। नृत्य का ताल भग हो गया। इन्द्र ने रुष्ट होकर मेरी नाक काट डाली और मुझे शाप दिया—"आज से तू मृत्यु लोक मे ही निवास कर और अपने प्रमाद का फल भोग।" मैं सन्न रह गई। मेरा यह चिन्तन भी नहीं था कि कभी ऐसी स्थिति आयेगी, किन्तु, आ ही गई। माली

का आग्रह मेरे लिए घातक प्रमाणित हुआ। मैने इन्द्र के चरण पकड लिए। विनय भरे शब्दों में अपराध के लिए क्षमा मागी और पूछा—"इस शाप का अन्त कब होगा?" इन्द्र ने कहा—तुझे मनुष्य का मांस खाना होगा। यह तुम्हारी प्रतिदिन की क्रिया होगी। इसी बीच यदि कोई पुरुष तुझे यह कहेगा—"नकटी! तेरी नाक किस वीर पुरुष ने काट डाली; उसी दिन तू शाप-मुक्त हो जायेगी।" मै यहां चली आई। सारे नगर-वासियों को मैने स्त्रियो और घोड़ों के माध्यम से ठगा व उन्हे मार कर खा गई। यहां आने वाले विदेशियो को भी मैने नही छोड़ा। किन्तु, आज तक भी, जो प्रश्न तूने पूछा वह किसी ने नही पूछा। यह किसी को सूझा भी नही। आज तूने मुझे यह प्रश्न पूछ कर शाप-मुक्त कर दिया। इसकी मैं आभारी हूं। प्रसन्नमना निवेदन करती हू, इन कन्याओं, घोडो और राज्य का तुम उपभोग करो।

धिप्ट ने स्मित-हास्य के साथ कहा—"आप मुझे राज्य तो प्रदान करती है, पर, ऐसे नगर का, जो विजन है। ऐसा राज्य ग्रहण कर मै क्या करूगा?"

वृद्धा ने कहा—"यदि मै मारना जानती हूं, तो जिलाना भी जानती हूं। तुम्हे जो राज्य प्रदान कर

रही हू, वह विजन नही होगा।" वृद्धा ने सजीवनी विद्या का तत्काल प्रयोग किया। सभी नागरिक व अन्य लाग भी जी पडे। वद्धा ने धिष्ट को राज्य समर्पित किया और अपन स्थान पर चली गई।

धिष्ट ने राज्य का अधिग्रहण किया। उसने अपने छहो साथियों को भी ससम्मान माडलिक पद पर स्थापित किया। राज्य व्यवस्थाए सुचारु रूप से चलने लगी।

एक बार साधुओ के परिवार के साथ एक आचार्य का शुभागमन हुआ। वे उद्यान मे विराजे। उद्यानपाल के सूचित करने पर राजा वन्दना करने, पर्युपासना करने व उपदेश सुनने के लिए आया। आचाय की देशना हुई। राजा विशेप प्रभावित हुआ। प्रवचन-ममाप्ति पर राजा ने एक प्रश्न उपस्थित कर दिया—'भगवन्! मैंने अपने पूव जीवन मे ऐसे क्या कम किये थे, जिनसे यहा शाकिनियो के चगुल मे ही फसता चला गया?"

आचार्य ने उत्तर दिया—'प्रतिष्ठानपुर मे हरिदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसके छ भृत्य थे। हरिदत्त शाकिनियों के आकर्षण मे ही प्रतिदिन लगा रहता था। वह यन्त्र-मन्त्र तन्त्र आदि से मण्डली का

उत्कीर्तन करता रहता था। वे छहो भृत्य गायन आदि से उसे सहयोग करते रहते थे। शाकिनियो का इस प्रकार निग्रह होता रहता था।

सौभाग्य से एक अच्छा प्रसग उपस्थित हुआ। एक मुनिवर का सुयोग मिला। सातो ही प्राणियो ने धर्म-कथा सुनी। सातो ने ही धर्मानुष्ठान मे अपने को प्रवृत्त किया। सलेखना पूर्वक शुभ भावो मे आयु समाप्त कर हरिदत्त यहा घिष्ट हुआ और उसके छहो अनुचर ये माण्डलिक हुए। पूर्व भव में शाकिनियो की कदर्थना व निग्रह किया था; अतः यहा पुन-पुन तुम्हारा शाकिनियो से पाला पडा।

पूर्व भव की घटनाओ की श्रुति से उन्हे उस जीवन की स्मृति भी हो आई। सभी ने सासारिक बन्धनो को छोड़ा और वैराग्य के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। शुभ अध्यवसाय और शुभ लेश्या मे शेष जीवन व्यतीत कर सभी स्वर्ग मे उत्पन्न हुए।

०

३

कुलध्वज

अयोध्या में शंख राजा राज्य करता था। रानी का नाम धारिणी था। कुमार का नाम कुलध्वज था। वह सदाचारी व माता-पिता का परम भक्त था। एक दिन वह क्रीडा के लिए उद्यान में गया। एक सघन वृक्ष के नीचे साधु-समुदय से परिवृत्त आचार्य मानतुंग विराजमान थे। कुमार कुलध्वज ने उनके दर्शन किये और पर्युपासना में लीन हो गया। आचार्य मानतुंग ने देशना के मध्य ब्रह्मचर्य साधना पर विशेष बल दिया। कुमार कुलध्वज ने निवेदन किया—"भगवन्! पूर्णत ब्रह्मचर्य की साधना मेरे लिए शक्य नहीं है। मैं स्वदार-सन्तोष व्रत ग्रहण करना चाहता हूँ। मैं यावज्जीवन के लिए पर स्त्री का परित्याग करता हूँ।"

कुमार कुलध्वज राजमहलों की ओर जा रहा था। मार्ग में उसे दो स्त्रियां मिली, जो परस्पर झगड रही

भेंट किया । साथ में यह भी कहा—'आप या कुमार कुलध्वज इस पर सवार होकर किसी दिशा मे प्रस्थान करें ।" राजकुमार ने निवेदन किया—"यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं घूमना चाहता हू ।" राजा ने सहर्ष अनुज्ञा प्रदान की । रथकार ने राजकुमार को गमनागमन के नियन्त्रण के लिए दो कीलिया प्रदान की । राजकुमार ने उन्हें लिया, राजा को नमस्कार किया और घोडे पर सवार होकर चल पडा । कुछ ही क्षणो में वह अदृश्य हो गया ।

राजकुमार कुलध्वज ने जी भर पृथ्वी का चक्कर लगाया । किसी नगर के निकटवर्ती उद्यान मे वह उतरा । राजकुमार थक गया था । विश्राम करने के अभिप्राय से उसने घोडे की कीलिया निकाल ली और उसे समेट कर सिर के नीचे लगा लिया । वह आनन्द से लेट गया । कुलध्वज जिस वृक्ष के नीचे लेट रहा था, उसकी छाया स्थिर हो गई । माली का उस ओर आना हो गया । वृक्ष को स्थिर छाया को देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ । माली ने सोचा, लेटने वाला पुरुष निश्चित ही प्रभावक है । माली ने कुमार के पैर के अगूठे को छूआ । कुमार जाग पडा । माली ने आतिथ्य स्वीकार करने का निवेदन किया । कुमार ने

उसे स्वीकार कर लिया। कुमार माली के घर आया। माली ने उसका हार्दिक सम्मान किया। कुमार ने समेटा हुआ घोडा एक कौने में डाल दिया। सायंकाल भोजन के अनन्तर नगर के अवलोकन के लिए चला। नाना स्थानो व दृश्यों को देखता हुआ वह भगवान् श्री मुनिसुव्रत के मन्दिर मे पहुच गया। परम भक्ति से उसने भगवान् को नमस्कार किया और स्तवना में लीन हो गया। उसी समय एक महिला आई। उसने सभी पुरुपो को बाहर निकाल दिया। कुलध्वज सोचने लगा, यह कौन है और मनुष्यों को वाहर क्यों निकाल रही है ? वह एक कौने में छिप गया और उसकी गतिविधियो को गौर से देखने लगा।

एक अन्य दिव्य कन्या आई। उसने भगवान् मुनि-सुव्रत की पूजा की और घर की ओर चल पड़ी। कुल-ध्वज कौने से बाहर आया। उसने उस कन्या के वारे में किसी व्यक्ति से पूछा। उसने उत्तर दिया—"इस नगर का नाम रत्नपुर है। यहाँ विजय राजा राज्य करता है। यह भगवान मुनिसुव्रत का परम श्रद्धालु श्रावक है। इसी राजा ने यह भव्य मन्दिर वनवाया है। रानी जयमाला है। जिस कन्या के वारे मे तुम पूछ रहे हो, उसका नाम सुन्दरी है। यह राजकुमारी है। कन्या

विवाह के योग्य हो गई, अत राजा चिन्तित हुआ। किन्तु, राजकुमारी ने सखियो के द्वारा राजा को कहलवा दिया—"अपनी शक्ति से ही जो राजा या विद्याधर स्वत मेरे महलो मे पहुच जाएगा, वही मेरा पति होगा। आप इसके लिए चिन्तित न हों। यदि कोई नहीं आयेगा, तो मैं जीवित ही अग्नि स्नान कर लूगी।"

कुलध्वज ने राजकुमारी के पास जाने का निश्चय किया। वह वहाँ से मालाकार के घर लौट आया। घोडे को सज्जित किया। रात्रि में कीलियो के प्रयोग से वह उडा और राजकुमारी के गवाक्ष पर उतरा। राजकुमारी निश्चिन्त सो रही थी। उसन चर्वित पान राजकुमारी की शय्या के चारो ओर बिखेर दिया। पुन उसी प्रकार से महल से बाहर आया। माली के घर आकर उसने विश्राम किया।

प्रात काल जब राजकुमारी जगी, तो उसने चर्वित पान को अपने चारो ओर बिखरा हुआ पाया। उसने सोचा, निश्चित ही कोई देव या विद्याधर आया है। आज भी वह पुन आयेगा। राजकुमारी अपने सुनहले भविष्य मे डूब गई। रात्रि की प्रतीक्षा मे बैठी हुई वह व्यग्र हो रही थी। दिन बीता। रात आई। कपट

नीद से वह अपनी शय्या पर लेट गई। कुलध्वज कुमार घोडे पर सवार होकर राजकुमारी के महलो में आया। चारों ओर चबाया हुआ पान बिखेर कर लौटने लगा। उसी समय राजकुमारी उठ बैठी और उसने कुमार का पल्ला पकड लिया। कुलध्वज और सुन्दरी के बीच सब तरह की बाते हुई। राजकुमारी ने कहा—"आज मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई है। मै जैसे चतुर व शौर्य-सम्पन्न पुरुष की प्रतीक्षा में थी, उसकी प्राप्ति आज हो चुकी है।" कन्या ने विवाह का प्रस्ताव रखा। कुलध्वज ने उसे स्वीकार कर लिया। दीपक की साक्षी से दोनो स्नेह-सूत्र में आवद्ध हो गये। कुलध्वज घोडे के माध्यम से प्रतिदिन वहाँ आने लगा। सुन्दरी का जीवन सुख की पराकाष्ठा पर पहुच गया।"

सुख में बीतने वाले क्षण आयु, यश, शारीरिक अवयव आदि सभी की वृद्धि के निमित्त वनते है। राजकुमारी सुन्दरी परम आनन्द मे थी। उसका शारीरिक सौन्दर्य भी प्रगुणित होने लगा। राजकुमारी की सेवा में रहने वाली दासियो ने जब उसके शरीर को देखा, उनका मन आशकाओ से भर गया। उन्होने सोचा, असमय ही राजकुमारी के अवयवो की वृद्धि अन्यथा घटना की ओर सकेत करती है। उन्होने रानी

उसी समय राजकुमारी उठ बैठी और उसने कुमार का पल्ला पकड लिया। कुनध्वज और सुन्दरी के बीच सब तरह की बातें हुईं। राजकुमारी न कहा— आज मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई है ।

से सारी घटना कह सुनाई। रानी ने भी राजकुमारी को गौर से देखा। उसे भी आशंका हुई। उसने राजा कहा। राजा आगबबूला हो गया। उसने रानी से कहा—"जिस दुष्ट ने मेरी राजकुमारी के साथ अकृत्य किया है, उसे परमधाम पहुचा कर ही मैं विराम लूगा।"

राजा की ऑखे खून बरसाने लगी। वह राजसभा में आया। राजा के चेहरे को सब ने पढा, तो सभी घबरा गये। वागुरा नामक नगर-नायिका भी वहाँ उपस्थित थी। उसने राजा के भावो मे गहराई से उतरने का प्रयत्न किया। वह वहाँ तक पहुंच नही पाई। साहस और सूझ-बूझ के साथ वह राजा के पास आई। उसने कारण जानना चाहा। राजा ने अपने मन का रहस्य उसे दे दिया। नगर-नायिका ने विश्वास दिलाते हुए कहा—"आप चिन्ता न करे। मैं उसे बाध कर शीघ्र ही आपके चरणों में प्रस्तुत कर दूगी।"

वागुरा अपने घर चली आई। उसने बुद्धि से काम लिया। रात्रि में प्रच्छन्न विधि से उसने राजकुमारी के शयन-गृह के चारो ओर भूमि पर सिन्दूर बिछवा दिया। कुलध्वज इस घटना से अनजान था। वह रात को सदा की भांति सुन्दरी के महलो में आया और

शेष निशा मे माली के घर लौट आया। प्रात नगर-नायिका राजकुमारी के महलो मे आई। भूमि पर फैले हुए सिन्दूर मे उसे एक पुरुष की पद-पक्ति दिखाई दी। उसके आधार पर उसने निश्चय किया, यह खेचर नही, भूचर ही है। आरक्षको को साथ लेकर वह उस पुरुष की खोज मे निकली। चारो ओर खोज हुई। वह एक स्थान पर पहुची, जहाँ कुछ व्यक्ति क्रीडा मग्न थे। एक व्यक्ति के पैर कुछ-कुछ रक्त आभा दे रहे थे। उसने निश्चय किया, यह वही है, जो राजकुमारी के महलो मे आता है। उसने आरक्षको को सकेत किया। कुलध्वज बन्दी बना लिया गया। उसे तत्काल राजा के समक्ष उपस्थित किया गया। उसे देखते ही राजा की भृकुटि तन गई। कडकते हुए उसने उसके तत्काल वध के लिए निर्देश दे दिया।

कुलध्वज के जीवन का यह विशेप अनुभव था। आरक्षक पुरुप उसे वध स्थान की ओर ले जा रहे थे। मार्ग मे मिलने वाले सहस्रो स्त्री पुरुप उसका भव्य ललाट देखकर उसकी सहानुभूति मे बोल पडते—"राजा ने इसके वध का आदेश देकर निश्चित ही भयकर भूल की है। इसके वियोग से कन्या भी नही बच पायेगी। राजकुमारी ने अज्ञता से दुष्कर्म कर

लिया, किन्तु, उसका प्रकाशन नही होना चाहिए था।" इस प्रकार नाना वाते सुनता हुआ कुलध्वज जा रहा था। वीच मे माली का घर आ गया। कुमार ने आरक्षक पुरुषों मे कहा—"यहां मेरी कुल देवी है। यदि आप अनुज्ञा प्रदान करे, तो मै अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में उसकी आराधना करना चाहता हू।" आरक्षको ने उसे अनुमति प्रदान कर दी। वह माली के घर आया। उसने अपने घोडे को सज्जित किया और उस पर वैठ कर सवके देखते-देखते पक्षी की तरह आकाश में उड गया। वहा से राजकुमारी के महल पर उतरा। राजकुमारी को अपने साथ विठाकर पुनः उडा और कुछ ही क्षणो मे दृष्टि से ओझल हो गया। समुद्र के तीर पर दोनों उतरे। कुलध्वज को भूख सताने लगी। राजकुमारी ने कहा—"आप यहा ठहरे। मैं राज-महलो में जाकर अभी मोदक ले आती हूं।"

मनुष्य जो सोचता है, वह कव हो पाता है? कुलध्वज समुद्र के तट पर वैठा मोदक की प्रतीक्षा कर रहा था। राजकुमारी उस घोड़े पर वैठकर उडी और अपने महलो मे पहुच गई। घोडे को गवाक्ष मे ठहरा दिया। शीघ्रता से महल मे गई और मोदक लेकर लौट आई। गवाक्ष मे आकर जव उसने घोड़े को

सम्हाला, तो काटो तो खून नही । जब वह अन्दर गई थी, हवा के झोके से घोडा गिर पडा और उसके टुकडे-टुकडे हो गये । राजकुमारी के लिए समस्या हो गई कि वह अब कुलध्वज के पास कैसे पहुचे । वह रोने लगी और अपने भाग्य को कोसने लगी—"अरे ! मेरे पूर्वाजित अशुभ कर्म उदय मे आ गये है । मैं अपने ही भाग्य द्वारा छली गई हू । मेरे स्वामी समुद्र-तट पर मेरी प्रतीक्षा करते होगे । मैं अभागिनी यहाँ बैठी हूँ । घोडा टूट गया है । मैं वहाँ कैसे पहुच पाऊगी । मेरे पर एक साथ ही दु ख का पहाड टूट पडा है। जब तक मुझे अपने स्वामी के दर्शन प्राप्त नही होगे, मैं भोजन ग्रहण नही करूँगी ।"

कुमार कुलध्वज कुछ समय तक राजकुमारी सुन्दरी की प्रतीक्षा करता रहा । जब वह नही आई, तट पर इधर-उधर घूमने लगा । उसने सोचा, सम्भव है, किसी विद्याधर ने उसका अपहरण कर लिया हो । उसी समय एक दिव्य विद्याधर-पत्नी आकाश से नीचे उतरी । कुमार के पास आई । उसे देखते ही कुमार चौंका । दूसरे ही क्षण उसने प्रश्न किया—"भद्रे ! तुम कौन हो ? कहा से आई हो ? कहाँ जा रही हो ?"

आगत महिला ने उत्तर दिया—"वैताढ्य पर्वत

पर मणिचूड विद्याधर राजा राज्य करता है। मै उसकी पटरानी हूं। मेरा नाम कनकमाला है। मेरे पति का विपक्षियो द्वारा अपहरण हो गया है। मै काम-वासना से पीडित हूं। इधर-उधर भटक रही थी। सहसा मेरी दृष्टि आप पर आकर अटक गई। इसी-लिए मै नीचे उतरी हू। आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करे।"

कुलध्वज के पूर्व गृहीत व्रत की कसौटी का प्रसंग उपस्थित हो गया। उसने तपाक से उत्तर दिया—"वहिन! दूर रहना। मैं नियमबद्ध हूं। परणीता पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री का मैंने बहुत पहले से ही परि-त्याग कर रखा है। प्राण-त्याग हो सकता है, किन्तु, प्रण-त्याग नही हो सकता।"

विद्याधर-पत्नी की आशाओ पर पानी फिर गया। रोप में आकर उसने फूलों को मत्रित किया और कुल-ध्वज पर डाल दिया। कुलध्वज अचेत होकर गिर पडा। विद्याधर-पत्नी ने उसे उठाकर समुद्र में फेक दिया। कुलध्वज के पुण्य का योग था। उसी समय जल देवी ने उसे अपने हाथों पर उठा लिया। उसे सचेत किया और उसकी घटना पूछी। कुलध्वज ने सारी घटना पर प्रकाश डाला। देवी ने उसके नियम

की कठोरता की भूरि-भूरि प्रशसा की और वर मागने का आग्रह करने लगी। कुमार ने कहा—"मेरी एक ही आकाक्षा है कि राजकुमारी सुन्दरी मुझे पुन प्राप्त हो जाये।" देवी ने उसे वहा से उठाया और राजकुमारी के महलो मे पहुचा दिया। कुलध्वज ने घोडे को टूटा हुआ और राजकुमारी को रोते हुए देखा। देवी ने पुन वरदान मागने के लिए कहा। कुलध्वज ने कहा—"मेरे घोडे को मूल रूप मे कर दो। यदि यह नही रहा, तो मेरा सवस्व ही जाता रहेगा।" देवी ने उसे ठीक कर दिया।

दासियो ने राजकुमारी व कुलध्वज के आगमन की सूचना राजा को दी। राजा कुपित हुआ और उसने कुमार को मारने के लिए अपने कुशल सैनिको को भेजा। कुलध्वज अश्व पर बैठकर आकाश मे उड गया। वहा से उसने सारी सेना के छक्के छुडा दिये।

राजा का राप कुछ ठण्डा पडा। उसने सोचा, मैने यह क्या कर दिया। कन्या तो किसी को दी ही जायेगी। ऐसा पौरुप-प्रधान कुमार कौन मिलेगा? उसने अपने निजी पुरुपो को भेजकर कुलध्वज को अपनी भावना कहलवायी। कुलध्वज ने उसे स्वीकार कर लिया। दोनो का प्रत्यक्ष विवाह खूब ही धूमधाम

से हुआ। कुलध्वज कुछ दिन ससुराल ठहरा। एक दिन श्वसुर से अनुमति लेकर अपने नगर की ओर चला। घोडे पर कुलध्वज और सुन्दरी सवार थे।

कुलध्वज को अपने नगर से प्रस्थान किये छ महीने बीत गये थे। राजा शख पुत्र–वियोग से कलपने लगा। उसका रोष रथकार पर प्रकट हुआ। राजा ने उससे कहा—"मेरे पुत्र-वियोग का तू निमित्त बना है, अत तुझे जीवित ही जलना होगा।" राजा का आदेश रथकार को शिरोधार्य करना पडा। शहर के बाहर चिता जला दी गई। राजपुरुष रथकार को लेकर वहा पहुचे और राजा व जनता की उपस्थिति में उसका तिरस्कार करते हुए उसे चिता में डालने लगे। उसी समय कुमार कुलध्वज अपनी सुरूपा पत्नी को लिए आकाश से उतरा। राजा कुमार को देखकर अतीव प्रसन्न हुआ। रथकार का अग्नि-स्नान भी रोक दिया गया। कुमार और रथकार को राजा ने गले से लगा लिया और धूमधामपूर्वक दोनों को लेकर शहर में आया।

राजा शख के देहावसान के बाद कुलध्वज ने राज-भार सम्भाला। सुन्दरी पटरानी बनी। एक बार एक आचार्य का शुभागमन हुआ। वे केवल ज्ञानी थे। राजा कुलध्वज देशना सुनने के लिए गया। वैराग्य से

भावित उपदेश से राजा विशेष प्रभावित हुआ। उसने आचार्य के चरणो मे भागवती दीक्षा ग्रहण की। स्वाध्याय, ध्यान और तप की मुनि कुलध्वज ने अलख जगा दी। पूर्वाजित कर्मों को नामशेष किया, केवल ज्ञान प्राप्त किया, कुछ समय तक भव्य जीवो का उद्धार करते रहे और अन्त मे सिद्ध, बुद्ध-पद प्राप्त हुए।

●

· ४ ·

दामनक

राजपुर नगर मे एक कुलपुत्र रहता था। श्रावक जिनदास उसका मित्र था। एक दिन कुलपुत्र जिनदास के साथ साधुओं के सम्पर्क में आया। साधुओ ने उसे धर्म का विशुद्ध स्वरूप बताया। कुलपुत्र ने इस अवसर पर मछली का मास न खाने का प्रत्याख्यान किया। वह उस नियम का अच्छी तरह से पालन कर रहा था। एक बार भयकर दुर्भिक्ष पडा। अनाज की अत्यधिक अल्पता हो गई। खाने के भी लाले पडने लगे। जनता में हाहाकार मच गया। अन्न के अभाव में जनता ने मछलियो का प्रयोग आरम्भ कर दिया। वड़े-से-बड़े निरामिप-भोजी भी फिसल गये। कोई ऐसा घर नही वच पाया होगा, जहां मछलियो का प्रयोग नही किया जाता हो। यह समस्या कुलपुत्र के समक्ष भी उपस्थित हुई। उसकी पत्नी ने उससे कहा—"बच्चे भूख से विलख

रहे है। उनका कलेजा मुह को श्रा रहा है और आप हाथ पर हाथ धरे बैठे है। आप जाए और कुछ मछलिया ले श्राए। अब बिना उनके उपयोग के हमारा काम नही चल सकेगा।'

कुलपुत्र ने उत्तर दिया—"अपनी भूख शान्त करने के लिए दूसरों के जीवन के साथ खिलवाड करना मुझे कतई अभीष्ट नही है। मेरा आहार श्रन्न ही है, श्रत मैं मछलियो की ओर श्रपने हाथ नही बढा सकता। पुत्रो की ममता है, तो वही ममत्व मेरा उन प्राणियो के प्रति भी है। मैं उसकी श्रवहेलना नही कर सकता।"

कुलपुत्र के शाले उसे बलपूवक नदी के तट पर ले गये। हाथ मे जाल देकर उसे नदी मे डालने के लिए विवश करने लगे। कुलपुत्र ने श्रन्यमनस्क भाव से उसे डाला। जाल ज्यो ही बाहर आया, उसमे बहुत सारी मछलिया थीं। वे तडफ रही थी। कुलपुत्र का हृदय करुणा से भर श्राया। उसने उन्हें पानी मे डाल दिया। कुलपुत्र ने तीन बार जाल डाला। तीनो ही बार जाल मे श्रनेक मछलिया श्राईं, पर, उसने उन्हें पुन पानी मे छोड दिया। उसी समय उसके मानस मे विचार उभरा—जैसा मुझे श्रपना जीवन प्रिय है, वैसा

ही इन सबको है । एक परिवार के लिए दूसरे प्राणियो को परिवार-मुक्त करू, यह उचित नही है ।" वह घर आया । समाधि भावना मे लीन होकर उसने अनशन कर दिया । सभी प्राणियो के प्रति मैत्री भावना का अनुचिन्तन करते हुए उसने शरीर-त्याग किया । राज-गृह मे मणिकार श्रेष्ठी के घर दामनक नाम से पुत्र हुआ ।

मणिकार का घर भरा-पूरा था । प्रचुर सम्पत्ति से वह धन-कुबेर की तरह लगता था । दामनक जब आठ वर्ष का हुआ, श्रेष्ठी के घर में मरी की बीमारी फैली । दुर्भाग्य की बात थी, दामनक के अतिरिक्त अन्य सभी मरी के चक्कर में आ गये । दामनक किशोर था । उसका कोई सहारा नही था । जब अभिभावकों की छाया उस पर से उठ गई, तो सम्पत्ति ने भी उससे मुंह मोड लिया । सागरपोत श्रेष्ठी के घर रहकर उसने अपना जीवन-यापन करना आरम्भ किया ।

सागरपोत श्रेष्ठी के घर एक दिन दो साधु गोचरी के लिए आए । वृद्ध साधु ने दामनक को लक्षित कर अपने सहवर्ती साधु से कहा—"एक दिन ऐसा आयेगा, जब यह किशोर इस घर का स्वामी बन जायेगा । आज यह रोटी के लिए भी टुकर-टुकर कर देख रहा है,

पर, उसे अब अधिक दिनों का कष्ट नही है ।"

मुनि के वाक्य सागरपोत के कानो से जा टकराये। उसे बहुत दु ख हुआ। उसने सोचा, जब मेरे योग्य पुत्र है, तब दूसरे कुल में पैदा हुआ व्यक्ति मेरे घर का स्वामी होगा, यह प्रश्न भी नही उठ सकता। मैं इसका अभी उपचार कर देता हू। श्रेष्ठी ने तत्काल चाण्डाल को बुलाया और दामनक के वध का उसको आदेश दे दिया। चाण्डाल उसे लेकर बहुत दूर चला गया। जब वह दामनक के चेहरे की ओर देखता, उसके मानस में नाना विचार उभरते। उस पर उसको दया आई और श्रेष्ठी पर रोष उभरा। चाण्डाल ने एक मार्ग निकाला। उसने दामनक की कनिष्ठा अगुली को थोडा-सा काट डाला और उससे कहा—"तू यहा से भाग जा। यदि कभी इस नगर की ओर तू ने मुह किया, तो मैं तुझे देखते ही मार डालूगा।"

सूने जगल मे दामनक अकेला चला जा रहा था। वह भयभीत था। उसे एक गोपालक मिला। उसके व्यक्तित्व से गोपालक प्रभावित हुआ और उसके प्रति उसकी ममता भी जगी। उसे अपने पास बुलाया और उसके बारे मे पूछा। दामनक ने आदि से अब तक का सारा वृत्त सुनाया। गोपालक ने उसे आश्वासन दिया

और अपने पास रख लिया। दामनक वहा रहने लगा। वह प्रतिदिन गौओ को चराता तथा वहा आनन्द से रहता। किशोरावस्था को छोडकर वह यौवन मे प्रविष्ट हुआ। सभी गोकुलवासियो के साथ उसकी घनिष्ठ मैत्री हो गई।

सागरपोत एक दिन गोकुल में आया। उसने वहां दामनक को देखा। उसके व्यक्तित्व से वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने उसके बारे मे वहा के निवासियों से पूछा। सभी ने एक ही उत्तर दिया—"यह अनाथ है। यही-कही भटक रहा था। गोपालक ने इसे अपने पुत्र के तुल्य समझकर पाला है।"

क्षुद्र दृष्टि व्यक्ति चाहे जिस गुप्त रहस्य का भी पता लगा लेता है। सागरपोत को निश्चय हो गया, यह वही बालक है, जिसको मैंने अपने घर से निकाला था। किसी प्रकार यह वहां से बच निकला है और यहा पहुंच गया है। सागरपोत उसे मारने पर तुला हुआ था। उसने अपने पुत्र के नाम से एक पत्र लिखा। गोपालक से कहा—"इस युवक के हाथ इस पत्र को अभी मेरे घर पहुचा दो।" गोपालक स्थिति से अपरिचित था। उसने उसे भेज दिया। दामनक राजगृह के समीप पहुचा। वह बहुत थक गया था; अतः एक

मन्दिर मे लेट गया। पास मे ही वह पत्र पडा था। सागरपोत की कन्या का नाम विषा था। वह देव-पूजन के अभिप्राय से उसी मन्दिर मे आई। पूजन के बाद जब वह घर की ओर जाने लगी, उसकी दृष्टि दामनक पर अटक गई। पास पडे हुए पत्र को पढने के लिए वह उत्सुक हो गई।। उसने अपने हस्त-लाघव से पत्र को उठाया, खोला और पढा। अपने ही पिता के हाथ का लिखा हुआ पत्र पढ़कर विषा को बहुत आश्चर्य हुआ। उसमे लिखा हुआ था, "यह अपने घर आ रहा है। पत्र पढते ही इसे विष दे देना।" विषा कभी पत्र पर अपनी दृष्टि गडाती और कभी दामनक पर। दामनक के व्यक्तित्व से वह बहुत प्रभावित हुई। उसने सोचा, मेरे पिता इसे विष दिलवा रहे है, यह तो अन्याय है। कितना सुन्दर हो, पिता जी मुझे इसको दे दें। उसन अपनी चातुरी से 'विष' के स्थान पर 'विषा' कर दिया। पत्र वहीं रख दिया और घर लौट आई।

दामनक सागरपोत का पत्र लेकर उसके पुत्र के पास पहुचा। पत्र उसे दिया। पुत्र ने पत्र पढते ही उसे योग्य वर समझ कर उसी दिन अपनी बहिन का विवाह उसके साथ कर दिया। सागरपोत घर आया। दाम-

अपने ही पिता के हाथ का लिखा हुआ पत्र पढकर विषा को बहुत आश्चर्य हुआ। उसमे लिखा हुआ था—"यह अपने घर आ रहा है। पत्र पढते ही इसे विष दे देना।"

नक को जब जामाता के रूप में देखा, तो उसके दु:ख का पार नहीं रहा । उसने वस्तुस्थिति का पता लगाया, तो ज्ञात हुआ कि किसी ने विष के स्थान पर विषा कर दिया । श्रेष्ठी अपना सिर पकड कर पछताने लगा ।

सागरपोत के एक ही धुन थी, दामनक को किसी भी तरह मारा जाये । वह जामाता बन गया, तथापि उसका वह विचार वैसा ही रहा । उसने अपने विश्वस्त सेवको को दामनक के वध के लिए आदेश दिया । उन्होंने उसे स्वीकार किया और उसी तैयारी में सलग्न हो गये । किन्तु, जब तक व्यक्ति के पुण्य का योग होता है, उसका बाल भी बाका नहीं हो सकता । वे सेवक इसी घात मे थे, पर, उन्हें ऐसा निर्बाध अवसर हाथ नही लगा । दामनक एक रात को मित्र के घर नाटक देखने के लिए गया । आधी रात तक उसने नाटक देखा । जब उसे नीद सताने लगी, घर लौट आया । घर के कपाट बन्द थे, अत वह बाहर ही चारपाई पर लेट गया । श्रेष्ठी के सेवक उसके पीछे लगे हुए ही थे। वे उसके वध को सन्नद्ध हुए । चारपाई पर खटमल अधिक थे, अत वह वहा से उठ कर पुन मित्र के घर चला गया । सागरपोत का पुन नाटक देखकर

आया और उसी चारपाई पर लेट गया। सेवको ने उसे दामनक समझ कर मार डाला।

दूसरो के लिए यदि खाई खोदी जाती है, तो स्वय के लिए कुंआ स्वत तैयार हो जाता है। प्रात. काल जब उसे सम्भाला गया, तो ज्ञात हुआ कि वह तो दामनक नही, अपना ही पुत्र है। श्रेष्ठी को बहुत आघात लगा। जिसे मारने के लिए अनहद प्रयत्न किये गये, वह अपने पुण्य-योग से सर्वथा बच निकला। श्रेष्ठी ने पत्नी से परामर्श किया। दोनों एक ही निश्चय पर पहुचे। उन्होंने दामनक को घर का भार सौप दिया। दामनक आनन्द के साथ रहने लगा।

दामनक माता-पिता की विरासत नही पा सका, पर, भाग्य ने जब बल खाया, पराई सम्पत्ति भी उसकी अपनी हो गई। एक दिन दामनक आमोद-प्रमोद में लीन था। कुछ नर्तक आए। नाटक के बीच उन्होंने एक गाथा पढी :

अणुपुखमावहंतावि अणत्था
तस्स बहुगुणा हुंति।
सुह-दु.ख कत्थं पडउ
जस्स कयंतो वहइ पक्खं॥

दामनक को यह गाथा बहुत रुचिकर प्रतीत

हुई। उसने उन्हें तत्काल एक लाख स्वर्ण मुद्राएं प्रदान की।

दामनक ने बहुत वर्षों तक सांसारिक ऐश्वर्य का उपभोग किया। साधुओं द्वारा प्रतिबोधित होकर उसने जैन धर्म की सम्यक् आराधना की। आयुष्य शेष कर वह देवलोक में गया। वहां से वह मनुष्य होगा और केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेगा।

●

: ५ :

असंमत

रत्नपुर नगर मे अरिमर्दन राजा राज्य करता था। राजकुमार का नाम ललितांग था। ललितांग सब विद्याओं में निपुण, माता-पिता का विनीत व भद्र था। एक बार वह वसन्त ऋतु में क्रीडा के लिए उद्यान में गया। उस दिन शहर के अनेकानेक स्त्री-पुरुष वहा आए हुए थे। सभी आमोद-प्रमोद में इधर-उधर घूम रहे थे। आगन्तुको मे मन्त्री की पत्नी भी थी। ललितांग और मन्त्रि-पत्नी का दृष्टि-मिलन हुआ। दोनो ही एक-दूसरे से अतिशय आकृष्ट हुए।

ललितांग ने अपने एक विश्वस्त मित्र को मन्त्रि-पत्नी के पास भेजा और उसके माध्यम से यह भी पुछवाया कि हमारा साक्षात् मिलन कब, कहां व कैसे हो सकेगा? ललिताग का सन्देश सुनते ही मन्त्रि-पत्नी की वाछे खिल उठी। उसने सारी ही पूर्व भूमिका बना

रखी थी। तत्काल उत्तर दिया—मेरा घर से कही बाहर जाना कतई सम्भव नही है। मेरा पति मुझे बाहर जाने ही नही देता। किसी व्यक्ति का मेरे घर पर आना और मेरे से एकान्त मे मिल पाना भी अशक्य है। इसका एक ही उपाय है —"मेरे घर से सटता हुआ एक कुआ है। वहा से अपने महलो तक कुमार सुरग खुदवा दें। वहा कुमार के दक्ष व विश्वस्त अनुचर पहले से ही तैनात रहें। मैं पति के साथ झगड कर कुए मे कूद पडू गी। इस प्रकार सहज ही मेरा मिलन कुमार के साथ हो जायेगा। वह मिलन भी घण्टे-दो घण्टे का नही, अपितु जीवन पर्यन्त का हो जाएगा।"

मन्त्रि-पत्नी ने अपनी विस्तृत योजना आगन्तुक मित्र को अच्छी तरह समझाकर उसे विसर्जित कर दिया। ललिताग ने सारी व्यवस्थाए उसी प्रकार करवा दी। एक निश्चित समय पर मन्त्रि-पत्नी गृह-कलह करती हुई कुए मे कूद पडी। कुमार के सेवकों का वहा प्रबन्ध था। वह तत्काल कुमार के महलो मे पहुच गई। कुए मे गिरते हुए उसे किसी ने नहीं देखा। मन्त्रि-पत्नी की घर मे अनुपस्थिति से चारो ओर खलबल मच गई। शहर के चप्पे चप्पे को छान डाला गया। सूने घर, देव-मन्दिर व बगीचे भी खोजे गये, पर,

उसका कही भी पता नही चला। मन्त्री का कलेजा मुंह को आ गया। किसी ने आशंका व्यक्त की—कही वह समीपवर्ती कुएं में ही न गिर पड़ी हो। तत्काल कुछ व्यक्तियो को कुएं में उतारा गया। अच्छी तरह से शोधन किया गया, पर, उसका कही भी अता-पता नही लगा। घटना शहर में फैल गई। घटना विकृत होती हुई राजा के कानो तक भी पहुंच गई। राजा बहुत कुपित हुआ। उसने आदेश दिया—"मन्त्री स्त्री-हत्या का अपराधी है; अतः इसकी सम्पत्ति हड़प ली जाये और इसे कारागार में डाल दिया जाये।"

राजा के आदेश को क्रियान्वित होने मे क्या विलम्व था ? स्थान-स्थान पर मन्त्री की विडम्बना होने लगी। कुमार ने भी उस घटना को सुना। उसका हृदय पिघलने लगा। रह-रह कर उसके मानस में विचार उभरने लगे—हाय ! मेरे कारण मन्त्री की यह विडम्वना ? वह निरपराधी है। अपराधी मैं हूं। मेरे अपराध का प्रायश्चित्त उसे करना पड़े ? मैंने उसकी पत्नी को भी छीन लिया और उसकी प्रतिष्ठा भी धूल में मिला डाली। मैं अपने आचार से गिरा हूं। यदि मेरी यह कलई खुल गई, तो मेरे कुल की प्रतिष्ठा पर कितनी आंच आएगी ? एक स्त्री के प्रति अनुरक्त

कायोत्सर्ग में लीन मुनि के पैर उसने लोहे की जंजीरों से बांध दिए। चारों ओर सूखी लकड़ियों का ढेर लगाकर अग्नि जला दी। आस-पास के वृक्ष आदि जलने लगे। मुनि चारों ओर से अग्नि से घिर गए।

कर अग्नि जला दी। आसपास के वृक्ष आदि जलने लगे। मुनि चारों ओर से अग्नि से घिर गए। वे अपने कायोत्सर्ग में लीन रहे। उन पर अग्नि का कोई प्रभाव नही हुआ।

असंमत प्रातः वहां आया। उसने जब उस स्थिति को देखा, तो बहुत प्रभावित हुआ। उसके नास्तिकता के विचारो में परिवर्तन आया। कठोर मानस भी कोमलता में बदल गया। तपः-प्रभाव की ओर सहज ही उसका मस्तक झुक गया। उसे अनुभव हुआ, तप से सारे विघ्न दूर होते है। सुख का अधिष्ठान तप ही है। उसके विचारों ने एक मोड़ लिया। वह वही खडा चिन्तन में लीन हो गया। चिन्तन ने उसके लिए नये द्वार खोले। मिथ्यात्व का विलय हुआ। सम्यक्त्व के उदय से व्रत की ओर बढा। अप्रमत्त स्थिति तक पहुचा। कषायो से निवृत्त हुआ। चिन्तन का इतना वेग था कि घातिकर्मो की समाप्ति हुई और केवल ज्ञान की उपलब्धि हुई। बहुत वर्षो तक केवल ज्ञानी असमत ने भव्य जीवों का उद्धार किया।

●

६

भीमकुमार

कमलपुर नगर मे नरवाहन राजा राज्य करता था। रानी का नाम मालती और कुमार का नाम भीम था। भीम पराक्रम मे सर्वत्र प्रसिद्ध था। एक बार वह उद्यान-यात्रा के लिए गया। वहा उसने एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक साधु को देखा। पास आकर कुमार ने नमस्कार किया और धर्मोपदेश सुनने के लिए बैठ गया। मुनिवर ने उसे भव्य आत्मा समझ कर धर्म का रहस्य बतलाया। भीमकुमार उससे बहुत प्रभावित हुआ। उसने सम्यक्त्व के साथ श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किये। मुनिवर अपनी ध्यान-क्रिया मे लीन हो गये और कुमार राजमहला में लौट आया।

भीमकुमार एक दिन आनन्द-मग्न बैठा था। कोई एक कापालिक वहा आया। उसके हाथ फूलो और फलो से भरे थे। उसने कुमार के सम्मुख उन्हे रखा

और कहा—"सत्पुरुष कभी किसी की प्रार्थना नही ठुकराते। मै भी एक प्रार्थना लेकर उपस्थित हुआ हूँ। आशा है, वह आप द्वारा स्वीकृत होगी।"

आगन्तुक कापालिक ने अपनी बात को विस्तार देते हुए कहा—"बारह वर्ष पूर्व मैने एक विद्या की साधना आरम्भ की थी। आगामी चतुर्दशी के दिन उसकी अन्तिम आराधना है। उसमें एक योग्य उत्तर साधक की आवश्यकता है। आपसे अधिक योग्य उत्तर साधक मुझे मिल नही सकेगा, अतः मै सेवा में उपस्थित हुआ हूं। आप परोपकारी है; अतः मेरी प्रार्थना अविलम्ब स्वीकार करेंगे।"

भीमकुमार पौरुष में अग्रणी था। उसने कापालिक के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। नियत दिन कुमार कापालिक के साथ चला। मंत्रि-पुत्र कुमार का मित्र था। जब उसे यह ज्ञात हुआ, उसने कुमार को कापालिक के साथ न जाने के लिए बहुत कहा, पर, कुमार नही रुका। वह उसके साथ चलता ही गया। कुमार के हाथ में तलवार थी। दोनों श्मशान मे पहुंचे। योगी ने मण्डल का आलेखन किया, देवता का पूजन किया और कुमार के शिखा-बन्ध के लिए प्रस्तुत हुआ। कुमार ने उसके दुष्ट अभिप्रायों को भाप

और कहा—"सत्पुरुष कभी किसी की प्रार्थना नही ठुकराते। मैं भी एक प्रार्थना लेकर उपस्थित हुआ हूँ। आशा है, वह आप द्वारा स्वीकृत होगी।"

आगन्तुक कापालिक ने अपनी बात को विस्तार देते हुए कहा—"बारह वर्ष पूर्व मैने एक विद्या की साधना आरम्भ की थी। आगामी चतुर्दशी के दिन उसकी अन्तिम आराधना है। उसमें एक योग्य उत्तर साधक की आवश्यकता है। आपसे अधिक योग्य उत्तर साधक मुझे मिल नही सकेगा, अतः मै सेवा में उपस्थित हुआ हूं। आप परोपकारी है; अतः मेरी प्रार्थना अविलम्ब स्वीकार करेंगे।"

भीमकुमार पौरुष में अग्रणी था। उसने कापालिक के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। नियत दिन कुमार कापालिक के साथ चला। मंत्रि-पुत्र कुमार का मित्र था। जब उसे यह ज्ञात हुआ, उसने कुमार को कापालिक के साथ न जाने के लिए बहुत कहा, पर, कुमार नही रुका। वह उसके साथ चलता ही गया। कुमार के हाथ में तलवार थी। दोनों श्मशान में पहुंचे। योगी ने मण्डल का आलेखन किया, देवता का पूजन किया और कुमार के शिखा-बन्ध के लिए प्रस्तुत हुआ। कुमार ने उसके दुष्ट अभिप्रायों को भाप

लिया। उसने गर्जते हुए कहा—"हमारा तो पौरुष ही विद्या-वध है। तू मेरी ओर क्यों बढ़ रहा है? अपनी ही चिन्ता में संलग्न रहना तेरे लिए उचित है। व्यन्तर यक्ष प्रभृति मेरे समक्ष समर्थ नहीं हो सकेंगे। तू पीछे हट।"

कापालिक विचार-मग्न हो गया। उसके पौरुष के समक्ष उसे अपना कार्य असिद्ध-सा ही लगने लगा। कुमार का मस्तक ले पाना अब बहुत कठिन है और उसके बिना मेरा कार्य सिद्ध नहीं हो सकेगा। बल-प्रयोग से ही यह कार्य सम्भव हो सकेगा। उसने भयंकर रूप बनाया और छुरी हाथ में लेकर कहा—"कुमार! अपने इष्ट देवों का स्मरण करले। यदि तू समझाने पर भी नहीं झुकेगा, तो बल प्रयोग से भी मैं तेरा मस्तक लेते हुए नहीं चूकूंगा और अपनी विद्या की साधना करूंगा।

भीमकुमार हंसने लगा। उसने कहा—"मूढ़! तू ने कायरों को ही दिग्मूढ़ बनाया है। सिंह का मस्तक छीनना तेरे जैसे शृगालों के साहस से बाहर की बात है।"

बातों ही बातों में दोनों में युद्ध ठन गया। कुमार ने कापालिक के सिर में घुमाकर मुष्टि की मारी। वह

भूमि पर गिर पड़ा। कुमार उसके सीने पर चढ़ आया। एक क्षण उसके मन में आया, धड़ और सिर को अलग कर दिया जाए। किन्तु, दूसरे ही क्षण कुमार के हृदय में करुणा उमड आई। उसने उसे नही मारा। केवल मार-पीट कर उसे छोड दिया। कापालिक सुबकिया भरने लगा। मार खाये हुए व्यक्ति को रोष अधिक आता है। उसने खड़े कुमार को पकड़ा और आकाश में उछाल दिया। एक यक्षिणी उस समय आकाश-मार्ग से जा रही थी। उसने कुमार को ऊपर हाथों में धर दबोचा। वह उसे अपने आवास पर ले आई। अपना परिचय देते हुए उसने कहा—"विन्ध्याचल पर्वत पर मेरा निवास-स्थान है। मेरा नाम कमला है और मै यक्षिणी हूं। तुम्हारे रूप पर मैं मुग्ध हूं; अतः तुम्हें यहां लाई हूं। तुम मेरी भावना को स्थान दो और मुझे कृतार्थ करो।"

भीमकुमार श्रावक था। श्रावक के लिए स्वपत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियां माता-भगिनी होती है। भीमकुमार अपने व्रत को तोड़ने के लिए कतई प्रस्तुत नही था। उसने स्पष्टतः अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा—"मै इस काम के योग्य नही हूँ, अतः इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता।" यक्षिणी कुमार

लिया। उसने गर्जते हुए कहा—"हमारा तो पौरुष ही विद्या-बल है। तू मेरी ओर क्यों बढ़ रहा है? अपनी ही चिन्ता में संलग्न रहना तेरे लिए उचित है। व्यन्तर यक्ष प्रभृति मेरे समक्ष समर्थ नहीं हो सकेंगे। तू पीछे हट।"

कापालिक विचार-मग्न हो गया। उसके पौरुष के समक्ष उसे अपना कार्य असिद्ध-सा ही लगने लगा। कुमार का मस्तक ले पाना अब बहुत कठिन है और उसके बिना मेरा कार्य सिद्ध नहीं हो सकेगा। बल-प्रयोग से ही यह कार्य सम्भव हो सकेगा। उसने भयंकर रूप बनाया और छुरी हाथ में लेकर कहा—"कुमार! अपने इष्ट देव का स्मरण कर ले। यदि तू समझाने पर भी नहीं मानेगा, तो बल-प्रयोग से भी मैं तेरा मस्तक लेने हुए नहीं चूकूँगा और अपनी विद्या की साधना करूँगा।

भीमकुमार हँसने लगा। उसने कहा—"मूर्ख! तू ने कायरों का ही शिरमुकुट बनाया है। सिंह का मस्तक छीनना तेरे जैसे शृगालों के साहस से बाहर की बात है।"

बातों ही बातों में दोनों में युद्ध ठन गया। कुमार ने कापालिक के सिर में घुमाकर मुट्ठी की मारी। वह

भूमि पर गिर पड़ा। कुमार उसके सीने पर चढ़ आया। एक क्षण उसके मन में आया, धड और सिर को अलग कर दिया जाए। किन्तु, दूसरे ही क्षण कुमार के हृदय में करुणा उमड आई। उसने उसे नही मारा। केवल मार-पीट कर उसे छोड़ दिया। कापालिक सुबकियां भरने लगा। मार खाये हुए व्यक्ति को रोष अधिक आता है। उसने खड़े कुमार को पकड़ा और आकाश में उछाल दिया। एक यक्षिणी उस समय आकाश-मार्ग से जा रही थी। उसने कुमार को ऊपर हाथों में धर दबोचा। वह उसे अपने आवास पर ले आई। अपना परिचय देते हुए उसने कहा—"विन्ध्याचल पर्वत पर मेरा निवास-स्थान है। मेरा नाम कमला है और मै यक्षिणी हूं। तुम्हारे रूप पर मैं मुग्ध हूं; अतः तुम्हें यहां लाई हूं। तुम मेरी भावना को स्थान दो और मुझे कृतार्थ करो।"

भीमकुमार श्रावक था। श्रावक के लिए स्वपत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियां माता-भगिनी होती है। भीमकुमार अपने व्रत को तोड़ने के लिए कतई प्रस्तुत नही था। उसने स्पष्टतः अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा—"मैं इस काम के योग्य नहीं हूँ; अत. इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता।" यक्षिणी कुमार

के उत्तर से बहुत हर्षित हुई। उसने कुमार की व्रत-भावना की भूरि-भूरि प्रशसा की।

यक्षिणी और कुमार बातो मे मग्न थे। सहसा मधुर ध्वनि कानो मे पडी। कुमार ने उसके बारे मे पूछा। यक्षिणी ने उत्तर दिया—"पर्वत-कन्दरा मे मुनियो का चतुर्मास है। यह उनकी स्वाध्याय-ध्वनि है। कुमार उसे सुनना चाहता था। वह मुनियो के उपपात में आया। मुनिवर से कुछ प्रश्न पूछने को ज्यो ही वह उद्यत हुआ, एक भुज वहा आया, और खड्ग छीनकर आकाश में जाने लगा। कुमार ने पौरुष का परिचय दिया। वह उस पर चढ आया। भुज कुमार को लेकर चल पडा। काली देवी के मन्दिर में उतरा। कुमार मन्दिर में गया। उसे वहा वही कापालिक दिखलाई दिया। भुज कापालिक के शरीर में प्रविष्ट हो गया। कुमार गुप्त रूप से वहा ठहर गया।

कापालिक अधम व्यक्ति था। वह अपनी साधना को सफल करने के लिए दूसरो के प्राणों के साथ अठ-खेलिया किया करता था। उसने उस समय भी एक सुन्दर युवक को अपने चगुल में फसा रखा था। एक ओर भीमकुमार का वहा पहुचना हुआ और दूसरी ओर कापालिक उस युवक के केश पकड कर उससेकहता

है—"अपने इष्टदेव का स्मरण कर ले। किसी का शरण भी तू ग्रहण करले। तेरा अन्त निकट है। मै इस तलवार से तेरा सिर काटूंगा।"

युवक घबराया नही। वैसी परिस्थिति मे भी उसने कहा–' वीतराग देव की मै शरण ग्रहण करता हू। भोमकुमार मेरे रक्षक है। मै उनका भी शरण ग्रहण करता हूं।"

भीमकुमार का नाम सुनते ही कापालिक की त्यौरियां चढ गई। उसने कडकते हुए उसे कहा—"मूर्ख ! उस कायर का शरण ग्रहण करते हुए तुझे लज्जा का अनुभव नही होता ? उसमें भी यदि पौरुष होता, तो भागकर मेरी आँखो से कभी ओझल नही होता।"

कुमार तत्काल प्रकट हुआ। उसने कापालिक को ललकारा—"अधम ! तू इसे क्यों मार रहा है ?"

कापालिक ने उस युवक को छोड़ दिया और भीमकुमार को मारने के लिए लपका। दोनो में घमासान युद्ध छिड़ गया। दोनो ही ओर से घात-प्रतिघात होने लगे। कुमार ने अवसान पाकर कापालिक को गलहत्था देकर भूमि पर गिरा दिया। उसके सीने पर चढ़कर कुमार ने उसे फटकारते हुए कहा–"तू दूसरो से इष्ट देव का स्मरण करने के लिए कहता है, पर, मै

तुझे कहता हूँ, तू भी अपने इष्ट देव का स्मरण करले। तेरी रक्षा करने वाला अब कोई नही है।" कुमार ने तलवार खीची और उस पर गहरा प्रहार करने के लिए अपने दोनों हाथो को ऊँचा उठाया। उसी समय काली देवी प्रकट हुई। उसने कहा—'कुमार! मैं तेरे पौरुष से प्रभावित हू। तू मेरे इस भक्त को छोड दे। इसे मत मार। मैं तुझे वरदान मागने के लिए कहती हू।"

कुमार ने बुद्धिमानी का परिचय दिया। उसने कहा—"यदि तुम मेरे पर प्रसन्न हो और मुझे वरदान देना ही चाहती हो, तो मैं यही याचना करता हू कि तुम सदा के लिए इस घोर हिंसा से उपराम ले लो। सभी प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है। मैं इससे अधिक और कुछ भी नही चाहता।"

देवी ने कुमार के समक्ष प्रतिज्ञा की और वह अदृश्य हो गई। कुमार ने कापालिक द्वारा अधिगृहीत उस युवक को गौर से देखा, तो ज्ञात हुआ यह तो मन्त्रि-पुत्र ही है। कुमार उसके पास आया और उसे अपनी छाती से भीड लिया। अपनी आत्मीयता का रस उडेलते हुए कुमार ने पूछा—"मित्र! तुम तो इसके स्वभाव से परिचित थे, इसके चक्कर में कैसे आ गये?"

मन्त्रि-पुत्र ने कहा—' मित्र! जब तुम्हें राज-महलो मे

नही देखा, तो सभी का कलेजा मुह की ओर आ गया। चारों ओर छानवीन की गई, पर, कोई परिणाम नहीं निकला। कुलदेवी की आराधना की गई। देवी ने वताया—"चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। कुछ ही दिनो में वह महती सम्पत्ति के साथ यहाँ स्वतः आ जाएगा। नगर-चर्चा सुनने के लिए मै घर से वाहर आया, तो इस कापालिक ने मुझे फंसा लिया और मैं यहाँ चला आया।"

दोनो मित्र बातों मे निमग्न थे। सहसा एक विचित्र घटना घटी। एक मस्त हाथी आया। उसने भीमकुमार व मंत्रि-पुत्र को सूड से उठाया और पीठ पर विठा कर आकाश-मार्ग से चल पडा। एक शून्य नगर की वडी प्रतोली के पास लाकर उन्हे छोड दिया और स्वय अदृश्य हो गया। भीमकुमार ने मंत्रि-पुत्र को नगर के बाहर ही रखा। स्वयं नगर में गया। नरसिंह के रूप में उसे एक व्यक्ति दिखाई दिया। उसके मुह मे एक सुन्दराकृति मनुष्य था। वह रुदन कर रहा था। कुमार का कारुणिक हृदय उसकी ओर प्रवृत्त हुआ। उसने उससे उसे छोडने का आग्रह किया। नरसिह ने कहा—"मै वहुत दिनो से भूखा हूँ। लम्बी प्रतीक्षा के वाद आज मुझे भक्ष्य मिला है; अत.
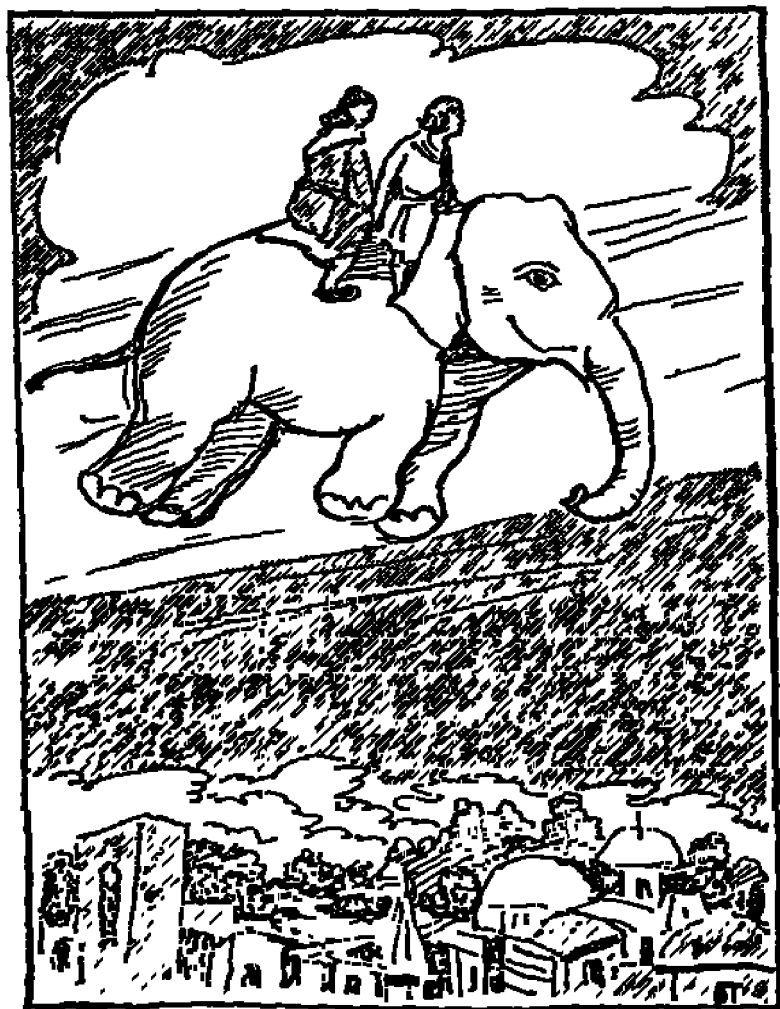
सहसा एक विचित्र घटना घटी। एक मस्त हाथी आया। उसने भीम कुमार व मन्त्रि-पुत्र को सूंड से उठाया और पीठ पर बिठा कर आकाश मार्ग से चल पड़ा।

इसे कैसे छोड़ दूं ?"

कुमार ने तत्काल उत्तर दिया—"ज्ञात होता है, तुम वैक्रिय शरीरी हो। वैक्रिय शरीरी का यह भक्ष्य कैसा ?"

नरसिह ने कहा—"तुम सत्य कहते हो, किन्तु, यह मेरे पूर्व भव का शत्रु है; अत इसे अवश्य ही मारूँगा। इसकी मृत्यु से ही मेरा कोप शान्त हो सकेगा।

कुमार ने नरसिह को वहुत समझाया, पर, वह मानने को कतई प्रस्तुत नही हुआ। कुमार ने पौरुष का परिचय दिया। उसने वलपूर्वक उसके मुंह से उसे छीन लिया। दोनो में लडाई ठन गई। कुमार ने नरसिह की कडी पिटाई की। नरसिह अदृश्य हो गया।

कुमार उस पुरुष के साथ राज-महलो में आया। तत्रस्थित पांचालिकाओ ने खड़े होकर कुमार का स्वागत किया। एक सुराही में पानी भरकर लाई। दूसरी ने कुमार के चरणों का प्रक्षालन आरम्भ किया, तीसरी ने स्नान के लिए अनुरोध किया, चौथी ने भोजन के लिए आग्रह किया और पाचवी ने दिव्य आभरणो से शरीर को अलकृत करने का निवेदन किया। कुमार ने बह सब कुछ स्वीकार किया। अलंकृत होकर ज्यों ही कुमार वहाँ बैठा, उसे एक देव दिखाई दिया। देव ने

अपनी ओर से कुमार को वरदान मागने के लिए कहा। कुमार ने वरदान मागने से पहले देव से नगर की शून्यता के बारे मे प्रश्न किया। देव ने कहा—"इस नगर का नाम कनकपुर है। यहाँ कनकरथ राजा राज्य करता था। पुरोहित का नाम सुदत्त था। सुदत्त आचार से गिरा हुआ था। उसकी प्रवृत्तियो से नागरिकों में काफी बेचैनी थी। उन्होने राजा से प्रार्थना की। राजा ने उसकी भर्त्सना की। वह वहाँ से मर कर राक्षस ही हुआ। वह राक्षस में ही हूँ। नरसिंह के रूप मे जिसने तुझे देखा था, वह मैं ही हू। मेरे मुह से जिसको तूने बचाया था, वही इस नगर का राजा है। मैं तेरे पौरुष से प्रभावित हुआ, अत पाचालिकाओ के माध्यम से मैंने ही तेरा स्वागत किया है। नागरिको को मैंने ही अपनी शक्ति से अदृश्य कर रखा है।

नगर के उद्यान मे केवली भगवान् का शुभागमन हुआ। भीमकुमार, मन्त्रि-पुत्र और राक्षस, तीनों ही उद्यान मे आए। विनम्रता से वन्दन कर वे यथास्थान बैठ गये। केवली भगवान् ने देशना आरम्भ की। अचानक एक हाथी सूड को घुमाता हुआ व गजता हुआ वहा आया। सारी सभा उसे देखते ही स्तब्ध

रह गई। हाथी ज्यो ही भीमकुमार के पास पहुचा, अतीव प्रसन्नमना होकर वहा ठहर गया। केवली ने उस घटना-प्रसग के सन्दर्भ मे कहा—"यह गज-रूप-धारी यक्ष राजा का पितामह है। भीमकुमार को यह अपने पौत्र की रक्षा के निमित्त लाया था, जिसमे यह सफल हो गया। भीमकुमार ने इसके पौत्र को राक्षस के चगुल से वचाया है।" यक्ष ने हाथी के रूप का परित्याग किया और कहा—"जो केवली भगवान् ने कहा है, वह सब सत्य है।"

कमलादेवी भी अपने विशेष ऐश्वर्य के साथ वहां पहुच गई। उसने केवली को नमस्कार करने के पूर्व भीमकुमार को नमस्कार किया। यह सभी के लिए आश्चर्य था। राजा ने विस्मय के साथ केवली भगवान् से प्रश्न किया। केवली ने उत्तर दिया—"भीमकुमार ने इसको जैन धर्म का बोध प्रदान किया था, अतः यह इसका गुरु है। गुरु आसन्न उपकारी होते है, इस अभिप्राय से इसने इसे पहिले नमस्कार किया है।"

यक्ष ने कुमार से निवेदन किया—"तुम्हारे विग्रह से तुम्हारे माता-पिता अतीव दु खित है; अतः अब नगर की ओर प्रयाण करना चाहिए।" कुमार ने उसे स्वीकार किया। यक्ष ने एक विशाल विमान की विकुर्वणा

की। मुनिवर को नमस्कार करके सभी विमान मे आरूढ हुए। कुमार बहुत शीघ्र ही अपने नगर पहुच गया। जब उसने माता-पिता के चरणो मे नमस्कार किया, उन्हें अतीव प्रसन्नता हुई। कुछ दिन राजा नरवाहन कुमार के साथ रहा। एक दिन शुभ मुहूत देखकर राजा ने भीमकुमार को राज्य-भार सौप दिया और स्वय प्रव्रजित होकर तपस्या मे लीन हो गया। पूर्वार्जित कर्मो का नाश किया और केवल ज्ञान प्राप्त कर निर्वाण-पद को प्राप्त किया।

भीमकुमार ने भी बहुत वर्षो तक राज्य का आनन्द पूवक सचालन किया। शेष अवस्था में कुमार को भार सौंपकर दीक्षा ग्रहण की और कम शेष कर मोक्ष को प्राप्त हुआ।

●

: ७ .

सागरचन्द्र

मलयपुर मे अमितचन्द्र राजा राज्य करता था। रानी का नाम चन्द्रकला और राजकुमार का नाम सागरचन्द्र था। राजकुमार का पौरुष प्रशसनीय था। महाबलिष्ठ गजेन्द्र और शक्तिधर राक्षस को भी वह निमेष मात्र में अपने अधीन कर सकता था। कुमार एक दिन नगर में क्रीड़ा करता हुआ घूम रहा था। उसकी एक पुरुष से भेट हुई। कुमार ने जब सामने देखा, तो ज्ञात हुआ कि बास के अग्रिम भाग पर एक लेख है। कुमार के मन में जिज्ञासा हुई, यह क्या है? उस पुरुष से उसने पूछा। उसने उत्तर मे कहा—"इस लेख में एक अपूर्व गाथा है। इसे वही व्यक्ति सुन सकता है, जो पांचसौ स्वर्ण-मुद्राएं प्रदान करे।" कुमार ने उसे वे प्रदान कीं। उस पुरुष ने कुमार को वह गाथा प्रदान की, जिसमें कहा गया था :

अपच्छिय चिय होयइ दुह सुह पि जीवाण ।
त चिय उवसमिउ धम्मे चिय कुणह पडिबध ।।

"सुख और दु ख अनचाहे होते हैं । उन्हें उपशान्त करने के लिए धार्मिक कार्यों मे विलम्ब नही करना चाहिए ।" कुमार उस गाथा का स्मरण करता हुआ उद्यान मे घूमता रहा तथा नाना क्रीडायें करता रहा ।

कुमार अपने जीवन की स्वर्णिम कल्पनाओं मे मग्न था । सहसा किसी ने उसका अपहरण किया और उसे समुद्र में डाल दिया । कुमार के पुण्य का योग था । एक काष्ठ फलक उसके हाथ लग गया । उसके सहारे से तैर कर वह नव दिन अमर द्वीप पर पहुचा । नारियल के जल का उसने मदन किया व थकान दूर की। वहा वह अकेला था, फिर भी उसे कष्ट की अनुभूति नही हो रही थी । वह जब भी एकान्त में होता, गाथा के अनुचिन्तन मे लीन हो जाता । एकाकीपन का उसका अभाव भर जाता । उस समय भी उसे अकेलापन तनिक भी नहीं खल रहा था । उसने कुछ फल-फूल तोडे और उन्हें खाकर अपनी भूख शान्त की । कुमार द्वीप के चारो ओर घूम रहा था । सहसा उसे किसी कन्या के रोने की आवाज सुनाई दी । कुमार के कदम

उस ओर ही वढ गए। जब वह लगभग निकट पहुचा, उसके कानो मे ये शब्द पडे—"अग्रिम जीवन मे भी सागरचन्द्र ही मेरा पति होना चाहिए।" कुमार उसे सुनते ही अवाक् रह गया। उसके कदम तीव्रता से आगे वढ़े। उसने देखा, एक कन्या गले में फासी डाल कर आत्म-हत्या कर रही है। उसके प्रतिकार के लिए उसके हाथ भी आगे वढे और कुशलतापूर्वक उसने उस रस्सी को काट गिराया। कन्या ने जब एक पुरुष को अपने सहयोग मे देखा, तो उसे अतीव आश्चर्य हुआ। कुमार ने जब दृष्टि घुमाकर देखा, तो उसके सामने ही एक विद्याधर खड़ा था। कुमार के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उसने कहा—"कन्या को जीवन-दान देकर आपने मेरे पर असीम उपकार किया है।"

कुमार के मन मे कुछ जिज्ञासाए थी। उसने विद्याधर के समक्ष कुछ प्रश्न उपस्थित किये—"यह कन्या कौन है और यहा कैसे आई है? इसने यह गल-पाश क्यों लिया? आप कौन है?"

विद्याधर ने उत्तर दिया—"इस अमर द्वीप में अमरपुर नगर है। राजा का नाम भुवनभानु और रानी का नाम चन्द्रवदना है। कन्या उनकी ही पुत्री है। इसका नाम कमलमाला है। मेरा नाम अमिततेज है

अपच्छिय चिय होयइ दुह सुह पि जीवाण ।
त चिय उवसमिउ धम्मे चिय कुणह पडिबध ।।

"सुख और दु ख अनचाहे होते है । उन्हे उपशान्त करने के लिए धार्मिक कार्यों में विलम्ब नही करना चाहिए ।" कुमार उस गाथा का स्मरण करता हुआ उद्यान मे घूमता रहा तथा नाना क्रीडायें करता रहा ।

कुमार अपने जीवन की स्वर्णिम कल्पनाओ में मग्न था । सहसा किसी ने उसका अपहरण किया और उसे समुद्र में डाल दिया । कुमार के पुण्य का योग था । एक काष्ठ-फलक उसके हाथ लग गया । उसके सहारे से तैर कर वह नव दिन अमर द्वीप पर पहुचा । नारियल के जल का उसने मदन किया व थकान दूर की । वहा वह अकेला था, फिर भी उसे कष्ट की अनुभूति नहीं हो रही थी । वह जब भी एकान्त मे होता, गाथा के अनुचिन्तन मे लीन हो जाता । एकाकीपन का उसका अभाव भर जाता । उस समय भी उसे अकेलापन तनिक भी नही खल रहा था । उसने कुछ फल-फूल तोडे और उन्हें खाकर अपनी भूख शान्त की । कुमार द्वीप के चारो ओर घूम रहा था । सहसा उसे किसी कन्या के रोने की आवाज सुनाई दी । कुमार के कदम

भुवनभानु ने विशेप उल्लास के साथ नये दामाद का हार्दिक स्वागत किया। सारा ही शहर सझाया व सवारा गया। सागरचन्द्र वही रहने लगा। एक दिन वह अपने महलो मे लेटा था, किन्तु, प्रात काल जब वह जगा, वहा नही था। स्वय को उसने किसी शैल-शृंग पर पाया। उसे अपने महल, कमलमाला आदि की स्मृतिया सताने लगी। वह दु खित होकर इधर-उधर घूमने लगा। किन्तु, जब उसे उस गाथा की स्मृति हुई, दु.ख भी हल्का हो गया।

दु ख मे सुख और सुख मे दु ख की अनुभूति का होना सहज ही है। सागरचन्द्र निर्भयता से घूम रहा था। अशोक वृक्ष के नीचे एक मुनि कायोत्सर्ग में लीन थे। उन्हे देखते ही उसका मानस प्रबुद्ध हो गया। वह मुनिवर के चरणो मे उपस्थित हुआ। जब मुनिवर ने कायोत्सर्ग सम्पन्न किया, उसने प्रश्न किया, "भगवन् ! प्राणी को सुख की उपलब्धि कैसे होती है ?" मुनिवर ने उसे योग्य पात्र समझा; अत विस्तार से उत्तर दिया और कहा—"सुख का मार्ग धर्म ही है। धर्म के अभाव मे अर्थ और काम भी फलित नही होते। सम्यक्त्व धर्म की आदि है।

सागरचन्द्र ने सम्यक्त्व ग्रहण की। उसके मन मे

इसका मामा हू । एक दिन इसने सागरचन्द्र का गुणानुवाद सुना । यह उससे बहुत प्रभावित हुई । इसने उसी समय प्रतिज्ञा की—"इस जन्म मे सागरचन्द्र ही मुझे पति प्राप्त हो । यदि ऐसा नही हुआ तो अग्नि-शरण ही ग्रहण करूगी ।" दूसरी ओर सूरसेन विद्याधर इसके लावण्य पर मुग्ध हो गया । उसने इसका अपहरण किया । कन्या रुदन कर रही थी । सहसा मेरा इस ओर आना हो गया । मैंने विद्याधर का प्रतिकार किया । दोनो में युद्ध छिड गया । मैंने उसे अपने पौरुष से मार गिराया ।'

सागरचन्द्र और अमितेज की बातें चल रही थी, उसी समय अमिततेज की पत्नी विद्युल्लता भी वहीं आ गई । उसने जब सागरचन्द्र को देखा, तो बोल उठी—"यही राजा अमितचन्द्र का पुत्र सागरचन्द्र है । एक वार नन्दीश्वर द्वीप जाते हुए मैंने इसे देखा था । सागरचन्द्र का नाम सुनते ही कमलमाला पुलक उठी । उसने सोचा, मेरा पुण्य-पुञ्ज है । कहा मैं और कहा यह कुमार ? कभी कल्पना ही नहीं कि मेरी भावना साकार होगी, किन्तु, मेरे सौभाग्य ने यह सब कर दिखाया है । अमिततेज ने सागरचन्द्र के साथ कमलमाला का वही विवाह कर दिया । वह अमरपुर आया । राजा

भुवनभानु ने विशेप उल्लास के साथ नये दामाद का हार्दिक स्वागत किया। सारा ही शहर सझाया व सवारा गया। सागरचन्द्र वही रहने लगा। एक दिन वह अपने महलो मे लेटा था, किन्तु, प्रात. काल जव वह जगा, वहां नहीं था। स्वय को उसने किसी शैल-शृग पर पाया। उसे अपने महल, कमलमाला आदि की स्मृतिया सताने लगी। वह दु:खित होकर इधर-उधर घूमने लगा। किन्तु, जव उसे उस गाथा की स्मृति हुई, दु ख भी हल्का हो गया।

दु.ख में सुख और सुख में दु.ख की अनुभूति का होना सहज ही है। सागरचन्द्र निर्भयता से घूम रहा था। अशोक वृक्ष के नीचे एक मुनि कायोत्सर्ग में लीन थे। उन्हे देखते ही उसका मानस प्रबुद्ध हो गया। वह मुनिवर के चरणों मे उपस्थित हुआ। जव मुनिवर ने कायोत्मर्ग सम्पन्न किया, उसने प्रश्न किया, "भगवन्! प्राणी को सुख की उपलब्धि कैसे होती है?" मुनिवर ने उसे योग्य पात्र समझा, अत विस्तार से उत्तर दिया और कहा—"सुख का मार्ग धर्म ही है। धर्म के अभाव में अर्थ और काम भी फलित नहीं होते। सम्यक्त्व धर्म की आदि है।

सागरचन्द्र ने सम्यक्त्व ग्रहण की। उसके मन मे

कुछ और भी जिज्ञासाए थी। वह उन्हें प्रस्तुत करना ही चाहता था कि ज्यो ही उसने आखें खोलीं, मुनिवर दिखाई नही दिये। वह विस्मितमना इधर-उधर उन्हें देखने लगा। अकस्मात् कुछ सैनिको के साथ समर-विजय उतरा और उसने कुमार को घेर लिया। सेना-नायक ने सैनिको को कठोर भाषा मे निर्देश दिया—"शीघ्रता करो और इस पापात्मा कुमार को मार डालो।" सागरचन्द्र अकेला था और उसके पास शस्त्र-सामग्री भी नही थी। सकट के उन क्षणो मे भी उसने उसी गाथा का स्मरण किया। उसका पौरुष फडक उठा। अपने पास खडे एक सैनिक से उसने शस्त्र छीने और उन पर हमला कर दिया। दोनो ओर से लडाई छिड गई। सागरचन्द्र ने अनेक सुभटों को मार गिराया और अनेक भाग खडे हुए। समरविजय बहुत क्रुद्ध हुआ। स्वय युद्ध भूमि में उतर आया। अपने समान बलिष्ठ योद्धा को देखकर सा[illegible] को भी प्रसन्नता हुई। दोनो सन्नद्ध होकर [illegible]
भी किसी को परास्त न कर सका। [illegible]
का प्रयोग किया। [illegible] उसे
सागरचन्द्र ने कुशलत[illegible]
युद्ध स्वत समाप्त [illegible]

स्वय युद्ध भूमि मे उतर आया। अपने समान वलिष्ठ योद्धा को देख कर सागरचन्द्र को भी प्रसन्नता हुई। दोनों सन्नद्ध होकर लडने लगे।

लगी ।

विजयी का उन्माद में भरना अस्वाभाविक नही होता । वह प्रतिस्पर्धी की अवमानना कर तृप्ति का अनुभव करता है । किन्तु, सागरचन्द्र इसका अपवाद प्रमाणित हुआ। उसका हृदय करुणा से भर आया । अपने हाथो समरविजय को उसने बन्धन-मुक्त किया ।

सागरचन्द्र के मानस मे इस प्रश्न का उभरना सहज ही था, समरविजय ने मेरे पर आक्रमण क्यो किया ? वह इसका समाधान पाने को अकुला रहा था । सहसा उसी समय वहा एक महिला चली आई। उसने सागरचन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहा—"कुशलवर्द्धन नगर में कमलचन्द्र राजा राज्य करता है। रानी का नाम अमरकान्ता और राजकुमारी का नाम भुवनकान्ता है । भुवनकान्ता ने किसी से सागरचन्द्र का गुणोत्कीर्तन सुना, तो वह उससे प्रभावित हुई । उसने प्रतिज्ञा कर ली है—"सागरचन्द्र ही मेरे पति हो । उनके अतिरिक्त सभी पुरुष सहोदर है ।"

महिला ने आगे कहा—"सोलापुर नगर मे सुदर्शन राजा राज्य करता है। उसके पुत्र का नाम समरविजय है । राजा सुदर्शन ने समरविजय के लिए भुवनकान्ता की मगनी की । किन्तु, राजा कमलचन्द्र ने उसे स्वी-

कार नहीं किया। समरविजय सेना लेकर कुशलवर्द्धन नगर चला आया। उसने प्रच्छन्नरूप से कन्या का अपहरण कर लिया। वह इसी वन मे चला आया। मैं उसी कन्या की धात्री हू। स्नेहवश मैं भी उसके साथ चली आई। मैंने तुम्हे देख कर पहिचान लिया, अत तुम्हारे पास आई हू। तुम भुवनकान्ता को स्वीकार कर हम सबको अनुगृहीत करो। समरविजय का सिर लज्जा से झुक गया। उसने चातुरी का परिचय देते हुए सागरचन्द्र से भुवनकान्ता को ग्रहण करने का आग्रह किया। विना मागे घी मिलता है। सागरचन्द्र ने विवाह की इच्छा नहीं की थी, फिर भी उसे विवाह के लिए तैयार होना ही पडा। वही उद्यान मे ही सागरचन्द्र भुवनकान्ता के साथ प्रणय-सूत्र मे आबद्ध हो गया।

नये श्वसुर से भेट करने के लिए सागरचन्द्र कुशलवर्द्धन नगर की ओर चला। मार्ग मे उसे वीणा व सगीत की मधुर ध्वनि सुनाई दी। सागरचन्द्र ने कन्याओ व रथ को वही छोड दिया। अकेला शब्द-ध्वनि की ओर चला। वह बहुत दूर निकल गया। गहन जगल में चला जा रहा था। एक सात मजिल का भव्य प्रासाद दृष्टिगत हुआ। वह उसमे चढ गया। जब सातवी मजिल पर वह पहुंचा, उसने पाच सुरूपा

कन्याओ को वहा देखा। सागरचन्द्र के पैर वहा पर कुछ ठिठके। कन्याओ ने देखते ही उसका स्वागत किया और बैठने के लिए आसन का अनुरोध किया। सागरचन्द्र उनके बीच बैठ गया। वार्तालाप का आरभ करते हुए उसने कन्याओ से अपने जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने के लिए कहा। कन्याओ ने उत्तर दिया—"वैताढ्य पर्वत पर विद्याधरो का अधिपति सिंहनाद रहता है। उसकी हम कमला, श्री, रम्भा, विमला, तारा नामक पाच कन्यायें हैं। एक बार हमारे पिताश्री ने किसी नैमित्तिक से हमारे वर के बारे मे पूछा। नैमित्तिक ने कहा—"राजा अमितचन्द्र का राजकुमार सागरचन्द्र इन कन्याओ का पति होगा। वह गहन विपिन मे स्वत ही कन्याओ को मिल जायेगा।" राजा ने नैमित्तिक को विसर्जित कर दिया। हमारे निवास के लिए राजा सिंहनाद ने इस घोर जगल में यह प्रासाद बनाया और हमे यहा रखा। हमारे पुण्य योग से आज आप यहा पधारे। हमें ग्रहण कर अनुगृहीत करें।"

सागरचन्द्र अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने उसी गाथा का स्मरण किया और उनके साथ विवाह किया। सागरचन्द्र ने कुछ क्षण बाद कन्याओ की ओर दृष्टि-

पात किया। उसे वे दिखाई नही दी। प्रासाद भी दृष्टिगत नही हुआ। उसने सोचा, क्या यह स्वप्न था, इन्द्रजाल था या देवमाया थी। उसने पुन गाथा का स्मरण किया और वहां से चल पडा। जहाँ रथ को छोडा था, वहाँ आया। रथ और दोनो कन्याये भी वहाँ नही थीं। उसे बहुत दु ख हुआ। सागरचन्द्र का आधार वही गाथा थी। उसने उसका अनुचिन्तन किया और आगे की ओर चल पडा एक जिन मन्दिर आया। सागरचन्द्र प्रतिमा की पूजा-स्तवना के अनन्तर एक ओर बैठ गया और गाथा के चिन्तन मे ही लीन हो गया। उसी समय मगलपुरी से सुधर्मा राजा भी वहाँ आ गया। वह सागरचन्द्र के पिता का मित्र था। उसने वहाँ सागरचन्द्र को देखा, तो अत्यन्त प्रमुदित हुआ। राजा के साथ उसकी सुन्दरी कन्या भी थी। वह भी सागरचन्द्र को देखकर पुलक उठी, क्योंकि किसी नैमित्तिक ने उसे बता रखा था कि सागरचन्द्र ही उसका पति होगा।

विद्याधर-राजा सिंहनाद भी अपनी पुत्रियों के साथ वहां चला आया। कुमार सागरचन्द्र को लक्षित कर उसने कहा—"हमारा सौभाग्य है कि तुम यहाँ सकुशल पहुंच गये।"

सागरचन्द्र विस्मित चित्त से चारो ओर देख रहा था। उसने तत्काल प्रश्न किया—"वह प्रासाद और मेरी परिणीता वे कन्याये कहाँ गईं ?

सिहनाद ने लम्बा उसास छोडा और कहा—"समुद्र-तट पर अमिततेज राजा राज्य करता है। उसकी रानी का नाम कनकमाला है। कमल और उत्पल उसके दो पुत्र है। कमल ने तुम्हारी भुवनकान्ता पत्नी का रथ से अपहरण कर लिया। अभी वह वैताढय पवत पर है। वह भुवनकान्ता के सतीत्व को नष्ट करने पर तुला हुआ है, पर, कन्या उससे सघपरत है। उसने अपने सतीत्व पर आच नही आने दी है। उत्पल ने पाचो कन्याओ का अपहरण किया और प्रासाद को अदृश्य कर दिया। उसने तुम्हें उस प्रासाद से नीचे उतार दिया। तुम्हें इसका पता भी नही चल सका। मुझे जब यह घटना ज्ञात हुई, मैंने उत्पल का सामना किया। उत्पल मेरे शस्त्र-प्रहार से मारा गया। मैंने उसके चगुल से कन्याओ को निकाला। अब ये तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत हं।

घटना सुनते ही मागरचन्द्र का खून खौलने लगा। उसने वैताढ्य पर ले चलने के लिए सिहनाद से आग्रह किया। उसने कहा—"मेरा एक एक क्षण भारा हो रहा है। मैं शीघ्रता स वहा पहुच कर दुष्ट कमल का

उन्मूलन करना चाहता हू ।"

राजा सुधर्मा ने सुन्दरी का विवाह सागरचन्द्र के साथ किया । विद्याधर राजा सिंहनाद सागरचन्द्र को अपने नगर ले आया । पाचो कन्याओ का पाणिग्रहण उसके साथ किया । कुमार को सिंहनाद ने बहुरूपिणी आदि विद्याए भी प्रदान की । सागरचन्द्र स्वय पराक्रमी था और विद्याओ की प्राप्ति से उसका बल शतगुणित हो गया । भुवनकान्ता के उद्धार के लिए वह चल पडा । राजा अमिततेज को जब यह ज्ञात हुआ, उसने सम्मुख आकर भुवनकान्ता को समर्पित कर दिया । कुमार के अपराध के लिए भी उसने बार-बार क्षमा-याचना की । अमिततेज ने उसकी प्रथम पत्नी कमला को लाकर भी उसे समर्पित किया । सागरचन्द्र आठ पत्नियो के साथ आनन्द से रहने लगा । विद्याधर-राजा सिंहनाद से अनुमति लेकर विमान से अपने नगर की ओर चला । राजा अमितचन्द्र के लिए यह बहुत ही सुखद सवाद था । उसने विशेष उत्सव के साथ पुत्र का नगर में प्रवेश करवाया । सागरचन्द्र ने माता-पिता के चरणो मे सादर नमस्कार किया और अपना सारा वृत्त सुनाया । आठो पत्नियो के साथ उसका समय सुख मे बीतने लगा ।

एक बार भुवनानन्द केवली का शुभागमन हुआ ।

राजा अमितचन्द्र राजकुमार के साथ उनके उपपात में आया। धम देशना के अनन्तर राजा ने प्रश्न किया— "भगवन् ! सागरचन्द्र का अपहरण किसने किया ? सागरच द्र का उसके साथ वैर क्यो व कब हुआ ?"

भुवनानन्द केवली ने उत्तर दिया—"महाविदेह क्षेत्र में दो वणिक् पुत्र थे। दोनो भाई समृद्धिशाली गुणज्ञ व विवेकी थे। अग्रज की पत्नी का अपने पति के प्रति अत्यन्त स्नेह था। एक दिन अग्रज व्यापार-काय से देशान्तर गया। कुछ दिन बाद अनुज ने भाभी से उपहास किया। रूआनी शक्ल मे उसने भाभी से कहा—"बन्धुवर को माग मे दुष्ट तस्करो ने मार दिया। भाभी को वज्र का सा आघात लगा। उसकी भी मत्यु वही हो गई। उपहास का कडुआ परिणाम देखकर अनुज का दिल दु ख से भर गया। कुछ दिन बाद अग्रज जब घर लौटा, उसे सारे घटना चक्र की अवगति हुई। वह अनुज पर अतिशय क्रुद्ध हुआ। अनुज ने अपने अपराध के लिए पुन -पुन क्षमा-प्राथना की। किन्तु, अग्रज का कोप शान्त नही हुआ। अग्रज तापस हो गया। बहुत वर्षा तक अज्ञान तप किया। कषाय-परिणामो मे मृत्यु प्राप्त कर वह असुर कुमार हुआ। अनुज ने जैन धम स्वीकार किया। दीक्षा पर्याय मे बहुत वर्षो तक रमण करता रहा। असुर कुमार

रोष से भर कर वहां आया। उसने प्रतिशोध लिया। अनुज मुनिवर को उसने शिला पर पछाड़ा। मुनिवर का वहीं स्वर्गवास हो गया। शुभ भावों की परिणति शुभ ही होती है। मुनिवर प्राणत कल्प में देव हुए। असुर कुमार संसार में भ्रमण करता हुआ पुनः असुर हुआ। अनुज प्राणत कल्प से च्यवकर तेरा राज-कुमार सागरचन्द्र हुआ। पूर्व वैर का बदला लेने के लिए उसी असुरकुमार ने सागरचन्द्र का अपहरण किया और समुद्र में डाला। अभी तक असुरकुमार का रोष शान्त नहीं हुआ है। समय आने पर सागरचन्द्र को वह और भी कष्ट देगा। विजय सागरचन्द्र की होगी। अन्ततः वह इससे प्रतिबोध भी प्राप्त करेगा।"

कभी-कभी घटने वाली घटना जीवन में अभिनव मोड़ ले आती है। पूर्व जन्म के इस वृत्त ने राजा अमितचन्द्र व राजकुमार सागरचन्द्र के मनोभावों में विशेष परिवर्तन कर दिया। राजा, रानी व राजकुमार तीनों ही विरक्त हुए। भुवनानन्द केवली के पास उन्होंने भागवती दीक्षा ग्रहण की। मुनि सागरचन्द्र एक बार चिन्तन-मुद्रा में थे। उनके विचार उभरे एक गाथा का समय-समय पर अनुचिन्तन कितना सुन्दर हुआ। यदि मैं अपना शेष जीवन श्रुत की उपा-सना में ही विशेषतः समर्पित कर दूं, तो आनन्द का

अविरल स्रोत वह चले। चिन्तन को तत्काल क्रियान्वित किया गया। उपाध्याय के निर्देशन उन्होने श्रुत का अस्खलित और गहरा अध्ययन किया आचाय ने उन्हे योग्य समझकर अपना उत्तराधिकार नियुक्त किया। बहुत वर्षों तक उहोने भव्य जीव का उद्धार किया। अन्तिम समय मे अनशन ग्रहण कर समाधि-भावना मे लीन हो गये। वही असुरकुमार देव आचाय सागरचन्द्र को पीडित करने के अभिप्राय से वहा आया। उसने म्वय को पक्षी के रूपसे बनाया, आचाय के शरीर को वार-बार नोचा। आचाय अविचलित रहे। असुरकुमार ने सिंह, गज आदि की विकुवणा कर आचाय को पीटित करने का प्रयत्न किया। आचाय अपनी समाधि मे लीन रहे। उनका एक रोम भी उस कष्ट से चलित नही हुआ। उसी परिपह शृङ्खला मे आचार्य केवल ज्ञानी बने। असुर-कुमार का रोप भी शा त हुआ। मुनिवर के अध्यात्म से वह प्रभावित हुआ। अपने अपराध के लिए पुन-पुन क्षमा-प्रार्थना करता हुआ केवल महोत्सव मे सम्मिलित हो गया। आचाय सागरचन्द्र ने अवशिष्ट कर्मों को समाधि की और ाश्वत सुख मे लोन हा गय। अमितचन्द्र प्रभृति माधु साध्विया न भी सयम की शुद्ध आराधना की। वे म्वग मे गय।